डॉ. आइंस्टीन और ब्रह्माण्ड

(The Universe and Dr. Einstein - by Lincoln Barnett)

मूल लेखक
लिंकन बारनेट

भूमिका
अल्बर्ट आइंस्टीन

अनुवादक
विद्याभूषण

1958

डा. आइन्स्टीन और ब्रह्माण्ड

(The Universe and Dr. Einstein—By Lincoln Barnett)

मूल लेखक

लिंकन बारनेट

भूमिका

अल्बर्ट आइन्स्टीन

अनुवादक

विद्याभूषण 'श्रीरश्मि'

काल, दिक् और पदार्थ का अर्थ

पर्ल पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड,

बम्बई—१

मूल्य ७५ नये पैसे

मूलग्रंथ का प्रथम हिंदी अनुवाद

प्रथम संस्करण १९५८

समर्पित

जे. के. बी. और एल. एच. बी. को

प्रकाशक : जी. एल. मीरचंदानी, पर्ल पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड,
१२, वाटरलू मैन्शन्स (रीगल सिनेमा के सामने),
महात्मा गांधी रोड, बम्बई–१.

मुद्रक : पी. एच्. रामन, एसोसिएटेड ऐडवर्टाइजर्स ऐण्ड प्रिन्टर्स,
५०५, आर्थर रोड, ताड़देव, बम्बई–७.

भूमिका

अल्बर्ट आइन्स्टीन

जिस किसी भी व्यक्ति ने किसी विशुद्ध वैज्ञानिक विषय को सर्वसुलभ ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, वह यह बात अच्छी तरह जानता है कि ऐसे प्रयास में कितनी अधिक कठिनाइयाँ सामने आती हैं। या तो वह समस्या के मूल अंशों को छिपा कर अपने पाठक को केवल ऊपरी बातें बताने अथवा अस्पष्ट संकेत देने में सफल होता है और इस प्रकार पाठक के मानस में मूल तत्त्व का भ्रमात्मक स्वरूप पैदा करके उसके साथ धोखेबाजी करता है; अथवा वह समस्या का गम्भीर विवरण इस रूप में प्रस्तुत करता है कि साधारण पाठक विषय को तनिक भी नहीं समझ पाता और उसमें आगे पढ़ने का उत्साह नहीं रह जाता।

यदि आज के लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य से इन दोनों कोटि की रचनाओं

को निकाल दिया जाये, तो इतना कम साहित्य शेष रह जाता है कि देख कर आश्चर्य होता है। किन्तु इसके बाद जो थोड़ा-सा साहित्य बच जाता है, वह वस्तुतः बहुत मूल्यवाने है। यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण है कि जनसाधारण को वैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रयत्नों और परिणामों को इच्छापूर्वक और बुद्धिमत्तापूर्वक समझने का अवसर दिया जाये। यही यथेष्ट नहीं है कि केवल विज्ञान-क्षेत्र के कुछ विशेषज्ञ वैज्ञानिक परीक्षणों के परिणामों को समझें और उनका विस्तार तथा प्रयोग करें। ज्ञान को केवल एक छोटे-से समुदाय तक सीमित कर देने से जनसाधारण की दार्शनिक प्रवृत्ति की हत्या होती है, जो आध्यात्मिक दरिद्रता उत्पन्न करती है।

लिंकन बारनेट की पुस्तक लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य के क्षेत्र में एक बहुमूल्य योगदान है। सापेक्षवाद (Relativity) के सिद्धान्त के मुख्य तथ्यों को इसमें बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त भौतिक विज्ञान (Physics) के सम्बन्ध में अभी हम लोगों की जो जानकारी ह, उसका समुचित ढंग से विवेचन किया गया है। इसमें लेखक ने यह दिखाया है कि किस तरह हमारे तथ्यात्मक ज्ञान का विकास— सभी प्रयोगसिद्ध परिणामों से सम्पन्न एक सुगठित सैद्धान्तिक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए किये हुए प्रयत्नों-सहित— वर्तमान स्थिति में पहुँचा है, जो कि सर्वमुखी सफलताओं के बावजूद मूलभूत सैद्धान्तिक धारणाओं के सम्बन्ध में अनिश्चित है।

प्रिन्सटन, न्यू जर्सी
१० सितम्बर, १९४८.

लेखक का कृतज्ञताज्ञापन

इस पुस्तक की तैयारी में सहायता और परामर्श देने के लिए मैं प्रिन्सटन-विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान-विभाग के डा. एलेन जी. शेन्सटन और डा. वेलेन्टिन बर्गमैन; प्रिन्सटन, न्यू जर्सी, के 'इन्स्टीटयूट फार ऐडवान्स्ड स्टडी' के डा. हरमन वील और 'कैलिफोर्निया इन्स्टीटयूट आफ टेक्नालाजी' के डा. एच. वी. राबर्टसन को धन्यवाद देता हूँ।

साथ ही, मैं 'हार्वर्ड आब्जरवेटरी' के डा. हारलो शैप्ले के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ, जिन्होंने मूल पांडुलिपि को पढ़ा और अपने बहुमूल्य सुझावों एवं आलोचनाओं से मुझे परिचित कराया— विशेषकर खगोल-विद्या (Astronomy) से सम्बन्धित भागों में।

कोलम्बिया-विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान-विभाग के डा. विलियम डब्ल्यू. हैवेन्स जूनियर के प्रति तो मैं बहुत ही अनुगृहीत हूँ; क्योंकि उन्होंने दोनों ही मूल पांडुलिपियों को— एक तो 'हार्पर्स' पत्रिका में प्रकाशन से पूर्व और दूसरी बार वर्तमान पुस्तक के रूप में— पढ़ा और कुछ सुधार किये। इस पुस्तक की तैयारी के समय मेरे सामने आनेवाली अनेक कठिनाइयों को हल करने में भी उन्होंने बड़ी सहृदयता और धैर्य के साथ अपने समय और ज्ञान से मुझे लाभान्वित किया।

जीवन-झाँकी

महान्तम आधुनिक वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन का जन्म सन् १८७९ में, एक यहूदी-परिवार में, जर्मनी के उल्म-नामक स्थान में हुआ। छोटी उम्र से ही उन्होंने गणित के क्षेत्र में अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ किया—पाँच वर्ष की छोटी आयु में ही उन्होंने कम्पास की सुई की गतिविधि के सम्बन्ध में अपना अनुमान व्यक्त किया और सैद्धान्तिक भौतिक विज्ञान (Theoretical Physics) में अपनी रुचि बढ़ायी। आगे चल कर, किशोर आइन्स्टीन ने विधिपूर्वक प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त करने का निश्चय किया और १७ वर्ष की आयु में वे ज्यूरिख-स्थित 'स्विस फेडरल पोलिटेकनिक स्कूल' में दाखिल हुए। इसके चार वर्षों के बाद ही वे गणित और भौतिक विज्ञान के शिक्षक-पद के योग्य प्रमाणित किये गये।

यह स्पष्ट है कि, स्विट्जरलेण्ड का उन्मुक्त वातावरण आइन्स्टीन को भा गया; क्योंकि सन् १९०१ में वे स्विट्जरलैण्ड के नागरिक बन गये और

स्विस पेटेण्ट आफिस में उन्हें एक प्रौद्योगिक-सहायक के पद पर नियुक्त किया गया। निश्चय ही, यह कोई बड़ा सम्मानित पद नहीं था, लेकिन आइन्स्टीन का सदा यह दृष्टिकोण रहा कि वैज्ञानिकों को जीविकोपार्जन के लिए सदा छोटे-छोटे काम ही करने चाहिए, जिससे सैद्धान्तिक विचारों के लिए उनका मस्तिष्क स्वतंत्र रह सके। यह काम उन्होंने चार वर्षों तक किया। इस अवधि में उन्होंने विवाह भी किया और दो बच्चों के पिता बने।

सन् १९०५ में, अकस्मात् ही, उन्होंने कुछ असाधारण नवीन विचार व्यक्त किये, जिनमें से एक सापेक्षवाद (Relativity) का विशेष सिद्धान्त भी था। इन आविष्कारों की प्रकृति एवं परिणामों की चर्चा श्री बारनेट ने इस पुस्तक में की है।

उनके अनुसन्धानों के प्रकाशन ने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और फलस्वरूप उन्हें पहले ज्यूरिख-विश्वविद्यालय में और बाद में प्रेग-विश्वविद्यालय में प्राध्यापक का पद दिया गया। सन् १९१३ में वे 'रायल प्रशियन अकादमी आफ साइन्स' के एक सदस्य और बर्लिन-विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक के रूप में जर्मनी लौट आये। लेकिन इन पदों पर उन्हें कुछ कार्य नहीं करना पड़ता था; उनका असली काम भौतिक विज्ञान-सम्बन्धी अनुसन्धानशाला के निर्देशक के रूप में था। यहाँ वे एकाग्रचित्त होकर सैद्धान्तिक चिन्तन में लीन रहे—सन् १९१४ में आरम्भ हुए प्रथम विश्व-युद्ध से भी उनके काम में बाधा नहीं पड़ी। उन्होंने अपनी बौद्धिक स्वच्छंदता भी अक्षुण्ण रखी और ९२ जर्मन बुद्धिवादियों के उस घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने से अस्वीकार कर दिया, जिसमें जर्मन संस्कृति और जर्मन सैनिक प्रवृत्ति को मान्यता दी गयी थी। उन्होंने सापेक्षवाद के सामान्य सिद्धान्त को सन् १९१६ में प्रकाशित किया और सम्पूर्ण युद्ध-काल तथा युद्ध-समाप्ति के बाद के कुछ वर्षों में भी वे उसके सुधार एवं विस्तार के कार्य में लगे रहे।

सन् १९२१ से १९३३ तक प्रोफेसर आइन्स्टीन ने सारे विश्व का भ्रमण किया और व्याख्यान दिये। इसी बीच उन्हें नोबेल-पुरस्कार दिया गया और

रायल सोसाइटी से काप्ले-पदक मिला। साथ ही, आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डाक्टर आफ साइन्स' की माननीय उपाधि से विभूषित किया। इन वर्षों में, अपने यहूदी होने के कारण, उन्होंने सक्रिय रूप से जियोनिज्म का भी समर्थन किया और यरुशलम-विश्वविद्यालय की स्थापना में डा. विजमैन का साथ दिया।

सन् १९२३ में जर्मनी में, हिटलर के शासन-काल में, यहूदी वैज्ञानिकों का बड़े पैमाने पर शुद्धीकरण-अभियान आरम्भ हुआ। उस समय डा. आइन्स्टीन अमेरिका के पासाडेना-नामक स्थान में अपनी व्याख्यानमाला आरम्भ किये हुए थे। उन्होंने जर्मनी लौटने से इन्कार कर दिया, जहाँ वैज्ञानिक स्वच्छंदता का दमन किया जाता था और विरोध-स्वरूप 'प्रशियन अकादमी' से त्यागपत्र दे दिया। वे स्थायी रूप से अमेरिका में बस गये और न्यू जर्सी के प्रिन्सटन-स्थित 'इन्स्टीटयूट फार ऐडवान्स्ड स्टडी' में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। उन्होंने अपने अंतिम दिन, जो कि प्रायः अवकाशप्राप्त रूप में व्यतीत हुए, अपने संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त (Unified Field Theory) के विकास में लगाये और न्यूटन के बाद का यह महानतम वैज्ञानिक १८ अप्रैल, १९५५ को, ७६ वर्ष की अवस्था में, इस लोक से विदा हुआ।

डा. आइन्स्टीन और ब्रह्माण्ड

—एक—

न्यूयार्क के रिवरसाइड गिरजाघर की सफेद दीवारों पर विभिन्न युगों के ६०० महान् व्यक्तियों की आकृतियाँ खुदी हुई हैं। ये आकृतियाँ महात्माओं, दार्शनिकों और राजाओं की हैं, जो पत्थर के रूप में अमरता प्राप्त कर अपनी सूनी अविनाशी आँखों से समय और संसार को देखती प्रतीत होती हैं। इन मूर्तियों की शृंखला का एक भाग विज्ञान-क्षेत्र के महान् प्रतिभावान लोगों की झाँकी प्रस्तुत करता है। १४ वैज्ञानिक हिप्पोक्रेटीज से लेकर (जो ईसवी सन् के लगभग ३७० वर्ष पूर्व मरे) अल्बर्ट आइन्स्टीन तक की (जो सन् १९५५ में मरे) शताब्दियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उन मृत लोगों की मूर्तियों की शृंखला में केवल आइन्स्टीन की ही एक ऐसी मूर्ति है, जो उनके जीवन-काल में स्थापित की गयी।

किन्तु यहाँ यह बात भी उतनी ही महत्वपूर्ण है कि मानहट्टन के सर्वाधिक सुन्दर प्रोटेस्टेण्ट-गिरजाघर में प्रति सप्ताह अर्चना के लिए जानेवाले हजारों लोगों में से सम्भवतः ९९ प्रतिशत यह नहीं बता सकेंगे कि वहाँ आइन्स्टीन की प्रतिमा क्यों है ? इसका उत्तर यह है कि प्रायः एक पीढ़ी पहले, जब गिरजाघर में प्रतिमा-प्रतिष्ठापन की योजना बनायी जा रही थी, तब डा. हैरी एमर्सन फास्डिक ने देश के प्रमुख वैज्ञानिकों को पत्र लिख कर कहा था कि वे विज्ञान-क्षेत्र के सर्वाधिक प्रमुख १४ वैज्ञानिकों के नामों की सूची प्रस्तुत करें। अधिकांश सूचियों में आर्किमीड्स, यूक्लिड, गैलिलियो और न्यूटन के नाम थे ; पर अल्बर्ट आइन्स्टीन का नाम प्रत्येक सूची में था।

सन् १९०५ से, जब कि प्रथम बार विशेष सापेक्षवाद (Relativity) का सिद्धान्त प्रकाशित हुआ था, ५० वर्षों तक आइन्स्टीन की वैज्ञानिक विशिष्टता और उसके जनसाधारण-द्वारा समझे गये रूप के बीच जो भयानक खाई उपस्थित रही, वह हमारी शिक्षा-प्रणाली में अन्तर्निहित रिक्तता का मापदंड है। आज अधिकांश समाचार-पत्र पढ़नेवाले इस बात से मोटे तौर पर परिचित हैं कि परमाणु-बम से आइन्स्टीन का सम्बन्ध था; लेकिन इस बात को छोड़ देने पर उनका नाम गूढ़ता के आवरण में ही रह जाता है। यद्यपि उनके सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, तथापि वे आधुनिक अध्ययन-क्षेत्र में अपना स्थान नहीं बना सके हैं। इसलिए यह बात तनिक भी विस्मयपूर्ण नहीं है कि एक कालेज-स्नातक अब भी आइन्स्टीन को, भौतिक-सत्यता (Physical Reality) को समझने के लिए मानव के मंद संघर्ष में अत्यधिक महत्वपूर्ण ब्रह्माण्डीय नियमों (Cosmic Laws) के आविष्कारक के रूप में नहीं, बल्कि एक विशुद्ध गणितज्ञ के रूप में जानता है। वह इस बात से परिचित नहीं है कि सापेक्षवाद अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों के अतिरिक्त एक महती दार्शनिक प्रणाली का भी जन्मदाता है, जो लाक, बर्कले और ह्यूम-जैसे महान् ज्ञानियों के विचारों को प्रकाशित और अभिवर्द्धित करती है।

परिणामतः वह अपने विशाल एवं रहस्यमय ब्रह्माण्ड (Universe) के बारे में, जिसमें वह निवास करता है, बहुत कम जानकारी रखता है।

× × ×

अंततः डा. आइन्स्टीन, जो १८ अप्रैल, १९५५ को प्रिन्स्टन, न्यू जर्सी, में काल-कवलित हुए, एक ऐसी समस्या को हल करने में सफल प्रतीत होते हैं, जिसने उन्हें २५ वर्षों से भी अधिक समय तक परेशान किया। यह उनका संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त (Unified Field Theory) ही है, जो पास्परिक अनुकूल समीकरणों (Equations) की शृंखला में, ब्रह्माण्ड की दो मूलभूत शक्तियों—गुरुत्वाकर्षण (Gravitation) और विद्युत्-चुम्बकत्व (Electromagnetism)—के संचालक भौतिक नियमों को निर्धारित करता है। इस कठिन कार्य का महत्व केवल तभी जाना जा सकता है, जब यह बात अच्छी तरह समझ ली जाये कि यथार्थतः प्रकृति की सभी घटनाएँ इन्हीं दो मौलिक शक्तियों-द्वारा संचालित होती हैं। अभी एक सौ वर्ष पहले तक विद्युत् (Electricity) और चुम्बकत्व (Magnetism) को, पृथक् तत्त्वों के रूप में माना जाता रहा है, यद्यपि ग्रीक-सभ्यता-काल से ही उनकी जानकारी है और उनका अध्ययन किया जाता रहा है। १९ वीं शताब्दी में ओर्स्टेड और फैराडे ने जो प्रयोग किये, उनसे यह व्यक्त हुआ कि विद्युत्-धारा (Electric Current) सदा ही एक चुम्बकीय क्षेत्र से घिरी होती है और कतिपय परिस्थितियों में तो उल्टी चुम्बकीय शक्तियाँ भी विद्युत्-धाराओं को प्रभावित कर सकती हैं। इन परीक्षणों से विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र का रहस्योद्घाटन हुआ, जिससे होकर प्रकाश-धाराएँ (Light Waves), रेडियो-तरंगें (Radio Waves) और अन्य सभी विद्युत्-चुम्बकीय व्यवधान दिक् (Space) में प्रसारित होते हैं। इस प्रकार विद्युत् और चुम्बकत्व को एक ही शक्ति के रूप में माना जा सकता है। गुरुत्वाकर्षण को छोड़ कर, दृष्ट ब्रह्माण्ड की लगभग अन्य सभी शक्तियाँ—संघर्षकारी शक्तियाँ; रासायनिक शक्तियाँ, जो परमाणु में अणुओं

को सुगठित रखती हैं ; एकीकरण-शक्तियाँ, जो पदार्थ के बड़े कणों को एकताबद्ध रखती हैं और स्थिति-स्थापिनी शक्तियाँ, जो वस्तुओं को अपना स्वरूप बनाये रखने में सहायता पहुँचाती हैं– मूलतः विद्युत्-चुम्बकीय हैं ; क्योंकि इन सबमें पदार्थों की परस्पर-क्रीड़ा होती है और प्रत्येक पदार्थ उन परमाणुओं से बनता है, जो विद्युत्-कणों के सम्मिश्रण होते हैं। फिर भी गुरुत्वाकर्षण और विद्युत्-चुम्बकत्व की परस्पर-समानताएँ बड़ी महत्वपूर्ण हैं। नक्षत्रगण सूर्य के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में घूमते हैं और विद्युत्-अणु (Electrons) आणविक केन्द्र (Atomic Nucleus) के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में घूमते हैं। यह पृथ्वी एक बड़ा चुम्बक है–इस अद्भुत तथ्य को वह व्यक्ति अच्छी तरह जानता है, जिसने कभी कम्पास का उपयोग किया है। सूर्य का भी एक चुम्बकीय क्षेत्र है। इसी तरह सभी सितारों के भी चुम्बकीय क्षेत्र हैं।

यद्यपि गुरुत्वाकर्षण को विद्युत्-चुम्बकीय प्रभाव मानने के लिए अनेक प्रयास किये गये हैं, तथापि अब तक वे सब-के-सब असफल सिद्ध हुए हैं। आइन्स्टीन ने भी सन् १९२९ में यह समझ लिया था कि इस क्षेत्र में उन्होंने सफलता प्राप्त कर ली और उन्होंने एक संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त प्रकाशित कर दिया, किन्तु बाद में अपर्याप्त बता कर उन्होंने स्वयं ही उसे अस्वीकृत भी कर दिया। नया सिद्धान्त, जो सन् १९४९ के अंतिम दिनों में पूरा हुआ, अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है ; क्योंकि इसमें न केवल अन्तर्नक्षत्रीय आकाश-मंडल के निस्सीम गुरुत्वाकर्षणमूलक और विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्रों से सम्बन्धित ब्रह्माण्ड के नियमों की घोषणा की गयी है, बल्कि अणु के अंतर्वर्ती अत्यन्त लघु, किन्तु भयानक क्षेत्र को भी व्यक्त किया गया है। संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त का महान् उद्देश्य सम्पूर्ण रूप से पूरा हो सकेगा या नहीं, इस बात को महीनों अथवा वर्षों के गणित-विषयक एवं परीक्षणात्मक कार्य ही व्यक्त कर सकेंगे। लेकिन व्यापक जगत् (Macrocosmos) एवं सूक्ष्म जगत् (Microcosmos)–दीर्घतम और लघुतम–के बीच की दूरी, विशाल ब्रह्माण्डीय स्वरूप के पूर्णतः प्रकट

होने पर पाटी जा सकेगी और ब्रह्माण्ड की सारी उलझनें एक स्वजातीय स्वरूप में उपस्थित होंगी। यह ऐसी स्थिति होगी, जिसमें पदार्थ (Matter) और शक्ति (Energy), दोनों अलग-अलग नहीं किये जा सकेंगे और गति के सभी रूप—छोटे तारों की मंद गति से लेकर विद्युत्-अणुओं की अद्भुत उड़ान तक—मौलिक क्षेत्र के आकार और केन्द्रीकरण में परिवर्तन-मात्र होंगे।

चूंकि विज्ञान का उद्देश्य इस संसार का, जिसमें हम निवास करते हैं, वर्णन और इसकी व्याख्या करना है, इसलिए केवल एक समन्वयात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रकृति की अनेक समस्याओं की व्याख्या करके, आइन्स्टीन ने एक महान् उद्देश्य को प्राप्त किया। 'व्याख्या' शब्द का अर्थ भी यथार्थता को जानने के लिए मनुष्य-द्वारा किये जानेवाले प्रत्येक प्रयत्न के साथ बदलता रहता है। वास्तव में, विज्ञान अभी तक विद्युत्, चुम्बकत्व और गुरुत्वाकर्षण की व्याख्या नहीं कर सकता। उनके प्रभावों को मापा जा सकता है और उस सम्बन्ध में भविष्यवाणी भी की जा सकती है, लेकिन उनके पूर्ण स्वरूप को आधुनिक वैज्ञानिक उतने से अधिक नहीं जानता, जितना मिलेटस का थेल्स जानता था। थेल्स ने, ईसा से ५८५ वर्ष पूर्व के लगभग, अम्बर में विद्युतीकरण का अनुमान लगाया था। अधिकांश आधुनिक भौतिक विज्ञानवेत्ता इस धारणा का खण्डन करते हैं कि मनुष्य कभी-न-कभी इन रहस्यपूर्ण शक्तियों की यथार्थता का उद्घाटन कर ही लेगा। बर्ट्रेण्ड रसेल का कहना है—"विद्युत् संत पाल के गिरजा-घर की तरह की कोई वस्तु नहीं है ; यह एक पद्धति है, जिसमें वस्तुएँ आचरण करती हैं। जब हम यह बता देते हैं कि विद्युतीकरण के उपरान्त वस्तुएँ कैसा आचरण करती हैं और किन परिस्थितियों में उनमें विद्युत् उत्पन्न होती है, तो समझ लीजिये कि हमने सब-कुछ बता दिया।" अभी हाल तक वैज्ञानिक ऐसे मत का तिरस्कार करते थे। अरस्तू का, जिसके प्रकृति-विज्ञान (Natural Science) ने पाश्चात्य विचार-धारा को दो हजार वर्षों तक प्रभावित किया, विश्वास था कि मनुष्य यथार्थता को स्वयंसिद्ध सिद्धान्तों (Self-evident

Principles) की सहायता से ही समझने में समर्थ होगा। उदाहरणार्थ, यह एक स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है कि ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु का अपना एक निश्चित स्थान है। फलतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुछ वस्तुएँ जो पृथ्वी पर आ गिरती हैं, वह इसलिए कि उनका स्थान यही है और धुआँ आकाश में इसलिए उड़ जाता है कि उसका निश्चित स्थान वहाँ है। अरस्तू के विज्ञान का लक्ष्य यह स्पष्ट करना था कि कोई बात क्यों होती है। आधुनिक विज्ञान का जन्म तब हुआ, जब गैलिलियो ने यह व्याख्या करने का प्रयत्न आरम्भ किया कि कोई बात कैसे होती है और इस प्रकार नियंत्रित परीक्षण (Controlled Experiment) की प्रणाली का जन्म हुआ, जो अब वैज्ञानिक अन्वेषणों का आधार बन गयी है।

गैलिलियो के आविष्कारों और अगली पीढ़ी में न्यूटन-द्वारा किये गये अन्वेषणों के परिणामस्वरूप शक्तियों, दबावों, उत्तेजनाओं, कम्पनों और तरंगों के एक यांत्रिक ब्रह्माण्ड (Mechanical Universe) का उदय हुआ। उस समय प्रकृति की कोई भी प्रक्रिया ऐसी नहीं दिखाई पड़ती थी, जो सामान्य अनुभवों के रूप में व्यक्त न की जा सके। इसे न्यूटन या तो ठोस प्रतिरूप बना कर समझा चुका था या तत्सम्बन्धी अद्‌भुत यांत्रिक नियमों की भविष्यवाणी कर चुका था। लेकिन विगत शताब्दी के अन्त में इन नियमों की कुछ भूलें स्पष्ट हो गयीं। यद्यपि ये भूलें बहुत मामूली थीं, तथापि उनके बुनियादी ढंग की होने के कारण न्यूटन के यंत्रवत् ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण भवन डगमगा उठा। 'विज्ञान इस बात की व्याख्या कर सकता है कि कोई बात कैसे होती है'—यह निश्चयात्मकता लगभग बीस वर्ष पहले धूमिल पड़ने लगी और अब यह प्रश्न आ उपस्थित हुआ है कि क्या वास्तव में आज का वैज्ञानिक 'यथार्थता' से तनिक भी सम्पर्क स्थापित कर सका है या करने की आशा कर सकता है?

— दो —

जिन बातों ने भौतिक विज्ञानवेत्ताओं को यंत्रवत् ब्रह्माण्ड के शांतिपूर्ण संचालन में अविश्वास करने को सर्वप्रथम बाध्य किया, उनका सम्बन्ध ज्ञान के आंतरिक और बाह्य क्षितिजों से— परमाणु के अदृष्ट क्षेत्र और अन्तर्ब्रह्माण्ड की अतल गहराइयों से— था। इन विषयों की परिमाणात्मक रूप से व्याख्या करने के लिए सन् १९०० से १९२७ के बीच दो बड़ी सैद्धान्तिक प्रणालियाँ उत्पन्न हुईं। इनमें से एक, प्रमात्रा-सिद्धान्त (Quantum Theory) था, जिसका सम्बन्ध पदार्थ और शक्ति की बुनियादी इकाइयों से था। दूसरा सिद्धान्त था सापेक्षवाद (Relativity), जिसका सम्बन्ध दिक्, काल और एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में ब्रह्माण्ड की बनावट से था।

ये दोनों ही आज आधुनिक भौतिक विज्ञान-सम्बन्धी विचारधारा के स्वीकृत मुख्याधार हैं। ये अपने-अपने क्षेत्र में घटनाओं के सुदृढ़ और गणित-

विषयक सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं। ये सिद्धान्त न्यूटन के 'कैसे' प्रश्न का उससे अधिक समाधान प्रस्तुत नहीं करते, जितना अरस्तू के 'क्यों' का न्यूटन के सिद्धान्तों-द्वारा समाधान हो सका था। उदाहरणस्वरूप, ये प्रकाश के विकिरण (Radiation) और गमन (Propagation) को संचालित करनेवाले नियमों की बहुत ही ठीक-ठीक ढंग से व्याख्या करनेवाले समीकरण (Equation) प्रस्तुत करते हैं; लेकिन वह वास्तविक यांत्रिक पद्धति, जिससे परमाणु प्रकाश फेंकता है और प्रकाश आकाश में जाता है, अब तक प्रकृति के महान्तम रहस्यों में से एक है। इसी तरह रेडियो-धर्मिता (Radio-activity) को संचालित करनेवाले नियम वैज्ञानिकों को यह पूर्वानुमान करने में समर्थ बनाते हैं कि यूरेनियम के एक निश्चित परिमाण में, एक निश्चित काल के अन्दर, परमाणु कितनी संख्या में खंडित होंगे। किन्तु कौन-कौन-से परमाणु विनष्ट होंगे और विनाश के लिए वे ही क्यों चुने गये, इन प्रश्नों का उत्तर मनुष्य अभी तक नहीं दे सकता।

प्रकृति के गणित-विषयक विवरण को स्वीकार करने के उद्देश्य से भौतिक विज्ञानवेत्ताओं को सामान्य अनुभवजन्य विश्व को – इन्द्रियग्राह्य (Sense-perceptible) विश्व को– त्यागने के लिए बाध्य होना पड़ा है। इस प्रत्यावर्तन के महत्व को समझने के लिए यह आवश्यक है कि भौतिक विज्ञान और अध्यात्म (Metaphysics) के बीच की सूक्ष्म रेखा को पार किया जाये। जब से तर्क-शक्ति का जन्म हुआ, तब से पर्यवेक्षक और यथार्थता– आराधक और आराध्य– के सम्बन्धवाले प्रश्नों ने दार्शनिक विचारकों को उद्विग्न बना रखा है। आज से २३ शताब्दी पहले यूनानी दार्शनिक डेमोक्रेटिस ने लिखा था–"मीठा और कड़वा, ठंडा और गर्म एवं विभिन्न रंग– ये सब चीजें हमारे विचारों में ही हैं; यथार्थतः इनका अस्तित्व नहीं है। वस्तुतः अस्तित्व है अपरिवर्तनीय कणों (Particles) का, परमाणुओं का और शून्य दिक् में उनकी गति का।" गैलिलियो भी रंग, स्वाद, गंध और ध्वनि-जैसे इन्द्रियग्राही गुणों के पूर्णतः

आत्मगत स्वरूप से परिचित था और उसने कहा था—"कभी-कभी उन वस्तुओं के स्पर्श से जो गुदगुदी या पीड़ा होती है, उससे अधिक उनका सम्बन्ध बाह्य वस्तुओं से नहीं बताया जा सकता।"

अँग्रेज दार्शनिक जान लाक ने पदार्थ के प्राथमिक और गौण गुणों का विभेद करके 'सार तत्त्वों की वास्तविकता' को जानने का प्रयत्न किया। इस तरह वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आकार, गति, ठोसपन और सभी ज्यामितीय तत्त्व किसी वस्तु के अपने वास्तविक अथवा प्राथमिक गुण होते हैं, जबकि रंग, ध्वनि, स्वाद, आदि-जैसे गौण गुण केवल इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न होते हैं। बाद के विचारकों के समक्ष इस विभेद की कृत्रिमता सहज ही स्पष्ट हो गयी।

महान् जर्मन गणितज्ञ लिबनिज ने लिखा—"मैं यह प्रमाणित कर सकता हूँ कि न केवल प्रकाश, रंग, ताप और इस तरह की अन्य चीजें; बल्कि गति, आकार और विस्तार भी वस्तु के ऊपरी गुण हैं।" उदाहरणस्वरूप, जैसे हमारी दृश्यशक्ति यह बतला देती है कि गोल्फ की गेंद सफेद है, उसी तरह हमारी स्पर्शानुभूति की मदद से वह यह भी बता देती है कि वह गोल, चिकनी और छोटी है। ये ऐसे गुण हैं, जो हमारी इन्द्रियों से पृथक् होने पर उस गुण से अधिक यथार्थता नहीं रखते, जिसे हम परम्परानुसार सफेद की संज्ञा देते हैं।

इस तरह दार्शनिक और वैज्ञानिक क्रमशः इस चमत्कारी निष्कर्ष पर पहुँचे कि चूँकि प्रत्येक पदार्थ केवल अपने गुणों का संयुक्त रूप है और चूँकि गुणों का अस्तित्व केवल मानस में रहता है; अतः पदार्थ और शक्ति तथा परमाणुओं और नक्षत्रों से सम्पन्न सम्पूर्ण पदार्थ-ब्रह्माण्ड, चेतना के एक निर्माण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जो मानवीय इन्द्रियों-द्वारा रूप-प्रदत्त लौकिक प्रतीकों का एक ढाँचा है। पदार्थवाद के कट्टर विरोधी बर्कले ने भी कहा है—"स्वर्ग की मोदमयता और संसार की सभी सामग्रियाँ— एक शब्द में, वे सभी तत्त्व जिनसे इस संसार का ढाँचा तैयार हुआ है— मानस को छोड़ देने के बाद कोई

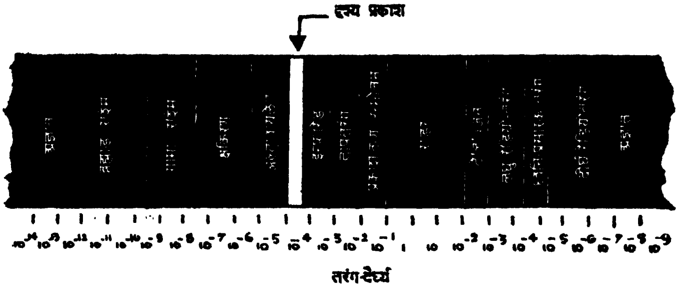
तथ्य नहीं रखतीं। जब तक हम उन्हें इन्द्रियों से ग्रहण नहीं करते, या जब तक वे हमारे या किसी अन्य प्राणी के मानस में अपना अस्तित्व नहीं रखतीं, तब तक या तो उनका एकदम अस्तित्व ही नहीं होता, या फिर वे किसी सनातन शक्ति के मानस में अपना अस्तित्व रखती हैं।" आइन्स्टीन यह प्रकट करके कि दिक्-काल भी केवल अंतर्ज्ञान के रूप हैं– जिनको रंग, रूप और आकार की धारणाओं की भाँति चेतना से विलग नहीं किया जा सकता– इस तर्क की गाड़ी को अपनी अन्तिम सीमा तक ले गये। दिक् का अस्तित्व केवल पदार्थों के क्रम या उनकी व्यवस्था में है– इसके अतिरिक्त वह कुछ नहीं है। इसी प्रकार काल घटनाओं के एक क्रम के अतिरिक्त, जिससे हम उसे मापते हैं, और कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखता।

× × ×

इन दार्शनिक अतिसूक्ष्मताओं (Subtleties) से आधुनिक विज्ञान बहुत अधिक प्रभावित है। दार्शनिकों ने सभी पदार्थीय यथार्थताओं को अनुभूतियों के एक छाया-विश्व में सीमित कर दिया, जिससे वैज्ञानिक मनुष्य की सीमित इन्द्रियग्राह्यता से परिचित हुए। जिस किसी भी व्यक्ति ने सूर्य-रश्मि-धारा में एक संक्षेत्र-काँच (Glass Prism) रख कर पर्दे पर सूर्य-रश्मियों के सतरंगी रूप को देखा है, उसने दृष्ट प्रकाश के सम्पूर्ण विस्तार का अवलोकन किया है। मानवीय आँखें केवल विकिरण (Radiation) की उस संकीर्ण पट्टी तक ही अपनी ग्राह्यशक्ति रखती हैं, जो लाल और बैंगनी किरणों के बीच में होती हैं। तरंगदैर्घ्य (Wavelength) में एक सेंटीमीटर के कुछ एक लाखवें हिस्से का अन्तर दृश्यता और अदृश्यता के अन्तर का निर्माण करता है। लाल प्रकाश का तरंगदैर्घ्य .००००७ सेंटीमीटर होता है और बैंगनी प्रकाश का .००००४ सेंटीमीटर।

लेकिन सूरज भी कुछ अन्य प्रकार के विकिरण छोड़ता है। उदाहरण-स्वरूप, विलोहित किरणें (Infra-red), जिनका तरंगदैर्घ्य .००००८ से

.०३२ सेंटीमीटर तक होता है, कृष्णपटल (Retina) को प्रकाश-ज्ञान कराने में समर्थ नहीं होतीं, हालाँकि त्वचा उन्हें ताप के रूप में अनुभव कर



विद्युत्-चुम्बकीय वर्णपट मानवीय आँखों को दिखाई देनेवाले विकिरण के संकीर्ण विस्तार को प्रकट करता है। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से, रेडियो-तरंगों, दृष्ट प्रकाश और क्ष-किरणों एवं गामा-किरणों-जैसे विकिरण के उच्च आवृत्तिवाले स्वरूपों के बीच एकमात्र अन्तर तरंगदैर्घ्य के क्षेत्र में होता है। लेकिन एक सेंटीमीटर के महाशंखवें हिस्सेवाले तरंगदैर्घ्य-सम्पन्न ब्रह्माण्ड-किरणों से लेकर अनन्त रूप से लम्बी रेडियो-तरंगों तक के विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण के दीर्घ विस्तार में से मानवीय आँखें केवल संकीर्ण पट्टी को ही चुनती हैं, जो ऊपर के नक्शे में सफेद अंश में दिखायी गयी है। इस प्रकार, मनुष्य जिस संसार में रहता है, उसको अनुभव करने की उसकी शक्ति, दर्शन-इन्द्रिय की सीमाओं से प्रतिबन्धित है। नक्शे में तरंगदैर्घ्य दशमलव-प्रणाली से दिखाया गया है; उदाहरणस्वरूप, $१०^{३}$ सेंटीमीटर बराबर है, $१० \times १० \times १० = १०००$ के और $१०^{-३}$ बराबर है, $\frac{१}{१०} \times \frac{१}{१०} \times \frac{१}{१०} = \frac{१}{१०००}$ के।

लेती है। इसी तरह लोहितोत्तर (Ultra-violet) किरणें, जिनका तरंग-दैर्घ्य.००००३ से .००००००१ सेंटीमीटर तक होता है, आँखों के लिए दृश्य नहीं हैं; लेकिन चित्रपटी पर उन्हें चित्रित किया जा सकता है। क्ष-किरणों (X-rays) के, जो लोहितोत्तर किरणों से भी छोटी होती हैं, प्रकाश के भी चित्र उतारे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त लघुतर और दीर्घतर अन्य आवृत्ति (Frequency) की विद्युत्-चुम्बकीय धाराएँ भी हैं– रेडियम की गामा (Gamma) किरणें, रेडियो-तरंगें (Radio waves), ब्रह्माण्डीय किरणें–जिनका कई तरीकों से पता तो लगाया जा सकता है, पर वे तरंगदैर्घ्य में प्रकाश से भिन्न होती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानवीय आँख विश्व के कई 'प्रकाशों' को दबा देती है; फलतः अपने आसपास की यथार्थता में मनुष्य जो-कुछ अनुभव कर भी सकता है, वह उसकी आँखों की सीमित शक्ति के कारण भंग हो जाता है और दुर्बल पड़ जाता है। यदि उसकी आँखें अधिक सूक्ष्मग्राही होतीं–उदाहरण के लिए, क्ष-किरणों के प्रति–तो यह संसार उसके समक्ष दूसरे ही रूप में प्रकट होता।

यह जानकारी, कि ब्रह्माण्ड का हमारा सम्पूर्ण ज्ञान हमारी अपूर्ण अनुभूतियों से आच्छादित प्रभावों का अवशेष-मात्र है, यथार्थ के सन्धान को निराशापूर्ण बना देती है। यदि अनुभवजन्य होने के अतिरिक्त किसी भी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है, तो संसार को व्यक्तिगत अनुभवों के संघर्ष में ही पड़ कर विनष्ट हो जाना चाहिए। किन्तु हमारी अनुभूतियों में एक अद्भुत व्यवस्था दिखाई पड़ती है, मानो वास्तव में पदार्थीय यथार्थता की कोई अन्तःवर्ती परत है, जिसे हमारी इन्द्रियाँ प्रकट करती हैं। यद्यपि कोई भी व्यक्ति यह नहीं जान सकता कि लाल रंग या 'स' ध्वनि की उसकी जो अनुभूति है, वही अनुभूति दूसरे व्यक्ति की भी होगी, तथापि यह धारणा बनाना सर्वथा सम्भव ह कि हर व्यक्ति के रंगों के देखने और ध्वनियों के सुनने में बहुत-कुछ समानता होती है।

डा. आइन्स्टीन और ब्रह्माण्ड

प्रकृति की इसी क्रियात्मक एकता का सम्बन्ध बर्कले, डेकार्ट और स्पिनोजा ने ईश्वर से बताया है। आधुनिक वज्ञानिक, जो बिना ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित किये हुए समस्याओं को सुलझाना चाहते हैं, (यद्यपि यह और भी कठिन प्रतीत होता है) इस बात पर जोर देते हैं कि प्रकृति रहस्यमय रूप से गणित-विषयक सिद्धान्तों पर चलती है। ब्रह्माण्ड के इस गणितै-विषयक अवलम्बन के ही कारण आइन्स्टीन-जैसे सिद्धान्तवादी केवल समीकरणों को सुलझा कर प्राकृतिक नियमों के बारे में भविष्यवाणी करने और उनका पता लगाने में समर्थ हुए हैं। लेकिन आज के भौतिक विज्ञान का विरोधाभास यह है कि गणित-विषयक यंत्रों में सुधार के साथ-साथ, पर्यवेक्षक मनुष्य और वैज्ञानिक विवरणवाले दृष्ट संसार के बीच की खाई चौड़ी ही होती जा रही है।

यह सम्भवतः महत्वपूर्ण तथ्य है कि साधारण परिमाण की दृष्टि से मनुष्य विस्तृत जगत् (Macrocosm) और सूक्ष्म जगत् (Microcosm) का मध्यमान है। सीधे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि एक महादीर्घ लाल सितारा (ब्रह्माण्ड का सबसे दीर्घाकार पदार्थ) मनुष्य से उतना ही बड़ा है, जितना एक विद्युत् कण (ब्रह्माण्ड का सबसे छोटा पदार्थ) उससे छोटा है। इसलिए न तो यह आश्चर्य की बात है कि प्रकृति के मुख्य रहस्य उन क्षेत्रों में अवस्थित हैं, जो इन्द्रियों के दास मनुष्य से काफी परे हैं और न यही कि वर्गीय भौतिक विज्ञान के निजी तत्त्वों में निहित पूर्ण यथार्थता का वर्णन कर सकने में असमर्थ विज्ञान, प्रकट होनेवाले गणित-विषयक सम्बन्धों का आलेख करके सन्तोष कर ले।

— तीन —

यांत्रिक व्याख्या से हट कर गणित की ओर बढ़ने की दिशा में विज्ञान ने पहला कदम सन् १९०० में उठाया, जब विकिरण के अध्ययन में उपस्थित कतिपय कठिनाइयों को दूर करने के लिए मैक्स प्लैंक ने अपना प्रमात्रा-सिद्धान्त प्रस्तुत किया। यह एक सामान्य ज्ञान की बात है कि जब गर्म पदार्थ बहुत अधिक ताप से उज्ज्वल हो उठते हैं, तब वे एक लाल चमक पैदा करते हैं, जो ताप बढ़ने के साथ-साथ नारंगी, पीला और सफेद रंग ग्रहण करती है। विगत शताब्दी में इस सम्बन्ध में एक नियम बनाने के लिए अत्यधिक प्रयत्न किये गये कि ऐसे गर्म पदार्थों-द्वारा विकीर्ण शक्ति (Radiant Energy) का परिमाण तरंगदैर्घ्य और तापमान के साथ किस तरह घटता-बढ़ता है। पर इस क्षेत्र में किये गये सभी प्रयत्न विफल हुए; केवल प्लैंक ने गणित की सहायता से एक ऐसा समीकरण ढूँढ़ निकाला, जो प्रयोग के परिणामों के अनुकूल सिद्ध हुआ। उसके समीकरण का असाधारण तत्त्व, आधार के रूप में यह मान्यता थी कि

विकीर्ण शक्ति अखंडित धारा के रूप में नहीं प्रवाहित होती, बल्कि खंडित रूप से, विभिन्न अंशों में, प्रवाहित होती है। इन अंशों को उसने 'प्रमात्रा' (Quanta) नाम दिया।

ऐसी मान्यता के लिए प्लैंक के पास कोई प्रमाण नहीं था, क्योंकि (तब या अब) कोई भी व्यक्ति विकिरण की वास्तविक क्रियाविधि से परिचित नहीं था। लेकिन पूर्णत: काल्पनिक आधार पर उसने कहा कि प्रत्येक प्रमात्रा, शक्ति का एक परिमाण रखती है, जिसे समीकरण के रूप में उसने $E=hv$ बतलाया। इस समीकरण में v विकिरण की आवृत्ति का द्योतक है और h प्लैंक की स्थिर की हुई छोटी-सी संख्या (प्राय: .००००००००००००००००००००००००००००६६२४) है, जो कि उसी समय से प्रकृति की सर्वाधिक बुनियादी स्थिरताओं में से एक प्रमाणित हुई ह। विकिरण की किसी भी प्रणाली में त्यक्त शक्ति (Emitted Energy) को आवृत्ति से विभाजित करन से परिणाम सदा h निकलता है। यद्यपि प्लैंक की स्थिर संख्या ने आधी शताब्दी तक आणविक भौतिक विज्ञान की गणनाओं को प्रभावित किया है, तथापि इसके परिमाण की, प्रकाश की गति के परिमाण से अधिक व्याख्या नहीं की जा सकती। अन्य ब्रह्माण्डीय स्थिरताओं की तरह ही यह केवल एक गणित-विषयक तथ्य है, जिसके लिए कोई व्याख्या प्रस्तुत नहीं की जा सकती। सर आर्थर एडिंगटन ने एक बार कहा था कि यह सम्भव है कि प्रकृति का कोई भी सच्चा नियम विवेकी मनुष्य को अविवेकपूर्ण लगे। अत: उसके विचार में प्लैंक का प्रमात्रा-सिद्धान्त उन कुछ सच्चे प्राकृतिक नियमों में से एक है, जिनका विज्ञान ने उद्घाटन किया है।

× × ×

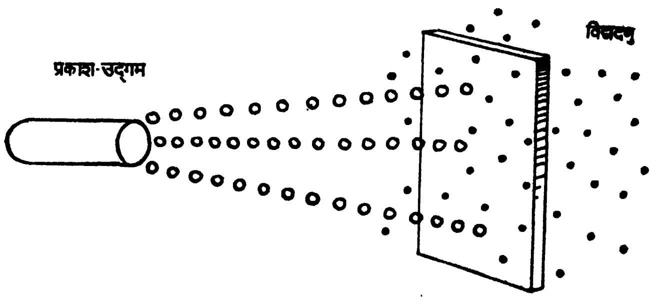
प्लैंक के अनुमान के विस्तृत परिणाम सन् १९०५ में प्रकाश में आये, जब आइन्स्टीन ने इसकी उपयोगिता की प्रशंसा की और प्रमात्रा-सिद्धान्त को एक नये

क्षेत्र में प्रविष्ट कराया। प्लैंक के समकालीन भौतिक विज्ञानवेत्ताओं में केवल आइन्स्टीन ने ही उसके महत्व को समझा। प्लैंक का विश्वास था कि वह केवल विकिरण के समीकरणों की त्रुटियाँ दूर कर रहा था। लेकिन आइन्स्टीन ने यह निष्कर्ष निकाला कि विकीर्ण शक्ति के सभी रूप—प्रकाश, ताप, क्ष-किरणें—वस्तुतः पृथक् और विश्रृंखल प्रमात्रा से होकर आकाश में विचरण करते हैं। इस प्रकार, आग के सामने बैठने पर हम जो ताप का अनुभव करते हैं, वह विकीर्ण ताप की असंख्य प्रमात्राओं-द्वारा शरीर पर होनेवाले हमले के कारण ही। इसी तरह, रंग का ज्ञान हम इसलिए प्राप्त करते हैं कि हमारी दृष्टि-स्नायुओं पर प्रकाश-प्रमात्राएँ हमला करती हैं, जो एक-दूसरे से ठीक उसी तरह भिन्न होती हैं, जिस तरह $E=h\nu$ समीकरण में ν की आवृत्ति विभिन्न होती है।

आइन्स्टीन ने प्रकाश-वैद्युत्-प्रभाव (Photoelectric Effect) नामक एक नियम तैयार करके, जो किसी जटिल घटना की सही-सही व्याख्या करता है, उपर्युक्त मत का प्रतिपादन किया। भौतिक विज्ञानवेत्ता इस बात की व्याख्या करने में असमर्थता का अनुभव कर रहे थे कि जब एक धातु-पट्टिका पर विशुद्ध बैंगनी प्रकाश को चमकने दिया जाता है, तब पट्टिका विद्युत्-अणु क्यों बिखेरती है। यदि लघु आवृत्तिवाले प्रकाश—पीला या लाल—पट्टिका पर पड़ें, तब भी विद्युत्-अणु बिखरेंगे, पर कम वेग (Velocity) से। धातु से विद्युत्-अणु किस वेग से अलग होते हैं, यह केवल प्रकाश के रंग पर निर्भर करता है, उसकी तीव्रता पर नहीं। यदि प्रकाश-उद्गम को तनिक दूर हटा दिया जाये और उसकी तीव्रता तनिक मंद कर दी जाये, तो बिखरनेवाले विद्युत्-अणुओं की संख्या कम हो जायेगी, लेकिन उनका वेग पूर्ववत् रहेगा। प्रकाश के अदृश्य हो जाने पर भी यह क्रिया तात्कालिक ही होती है।

आइन्स्टीन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इन विचित्र प्रभावों की व्याख्या यह मान कर ही की जा सकती है कि सभी प्रकाश पृथक्-पृथक् कणों अथवा

शक्ति-कणों से निर्मित होते हैं और इन कणों को उन्होंने 'फोटोन' (Photon) नाम दिया। उन्होंने यह भी बतलाया कि जब कोई कण किसी विद्युत्-अणु से टकराता है, तो परिणाम बिलियर्ड की दो गेंदों की टक्कर की तरह का



प्रकाश-वैद्युत्-प्रभाव की व्याख्या आइन्स्टीन ने सन् १९०५ में की थी। जब प्रकाश एक धातु-पट्टिका पर पड़ता है, तब पट्टिका से विद्युत्-अणुओं की एक झड़ी बिखरती है। इस विषय की, प्रकाश के सामान्य तरंग-सिद्धान्त से, व्याख्या नहीं की जा सकती। अतः आइन्स्टीन ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रकाश शक्ति की अविरल धारा नहीं है, बल्कि इसका निर्माण अलग-कलग कणों अथवा शक्ति-समूहों से होता है, जिन्हें उन्होंने 'फोटोन' नाम दिया। जब एक फोटोन किसी विद्युत्-अणु से टकराता है, तब परिणाम बिलियर्ड की गेंदों की तरह निकलता है, जैसा कि ऊपर के चित्र में दिखाया गया है।

निकलता है। साथ ही, उन्होंने कहा कि बैंगनी, लोहितोत्तर और उच्च-आवृत्ति के विकिरण के दूसरे स्वरूपों के फोटोन, लाल और विलोहित रंगों के फोटोनों

से ज्यादा शक्ति रखते हैं एवं धातु-पट्टिका से प्रत्येक विद्युत्-अणु जिस वेग से बिखरता है, वह टक्कर होनेवाले फोटोन में निहित शक्ति के अनुपात में होता है। उन्होंने इन सिद्धान्तों को कुछ ऐसे ऐतिहासिक समीकरणों की श्रृंखला में व्यक्त किया, जिनके कारण उन्हें नोबेल-पुरस्कार मिला और आगे चल कर इन तथ्यों का प्रमात्रा-भौतिक विज्ञान एवं वर्णपट-दर्शन (Spectroscopy) पर बड़ा गहरा असर पड़ा। टेलिविजन और प्रकाश-वैद्युत्-घट के दूसरे प्रयोग वस्तुतः आइन्स्टीन के प्रकाश-वैद्युत्-नियम के कारण ही अस्तित्व में आये।

× × ×

इस प्रकार, एक महत्वपूर्ण नवीन भौतिक विज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त उपस्थित करने के साथ-साथ आइन्स्टीन ने प्रकृति की एक सबसे गूढ़ और परेशान करने-वाली पहेली का उद्‌घाटन किया। आज इस बात में किसी को भी संदेह नहीं है कि सभी पदार्थ परमाणुओं से बने हैं और परमाणु का निर्माण और भी छोटे तत्त्वों– विद्युत्-अणु (Electrons), विद्युत-विहीन अणु (Neutrons) और घन विद्युत्-कण (Protons)– से होता है। लेकिन आइन्स्टीन की यह मान्यता, कि प्रकाश भी विश्रृंखल कणों से निर्मित हो सकता है, एक अधिक सम्मान्य सिद्धान्त से टकरा गयी, जिसका कहना था कि प्रकाश का निर्माण तरंगों से होता है।

वास्तव में, प्रकाश-सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें हैं, जिनकी व्याख्या केवल तरंग-सिद्धान्त से ही हो सकती है। उदाहरण के लिए, मकानों, वृक्षों और तार के खम्भों-जैसी सामान्य वस्तुओं की छायाएँ बहुत स्पष्ट दीख पड़ती हैं; लेकिन जब एक बहुत बारीक तार या बाल को प्रकाश-उद्‌गम और पर्दे के बीच रखा जाता है, तब उसकी कोई छाया नहीं दिखाई पड़ती और इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकाश की किरणें उस वस्तु के पास से होकर ठीक उसी तरह गुजर गयीं, जिस प्रकार पानी की लहरें किसी छोटे पत्थर के पास से गुजर जाती हैं। इसी तरह, एक गोल छेद से होकर गुजरनेवाली

प्रकाश-किरणें तो पर्दे पर बहुत स्पष्ट रूप धारण करती हैं; लेकिन यदि छेद को पिन के छेद के आकार का बना दिया जाये, तब पर्दे पर कोई गोलाकार प्रकाश-पुंज नहीं उतरता और प्रकाश की अन्य विकल्पात्मक समकेन्द्रीय पट्टियों और अन्धकार का प्रभाव बना रह जाता है। इस घटना को 'विवर्तन' (Diffraction) नाम दिया गया है और इसकी तुलना सागर की उन तरंगों की क्रिया से की गयी है, जो एक बन्दरगाह के सँकरे मुहाने से होकर गुजरते समय झुकती और छितरा जाती हैं। यदि एक सूक्ष्म छेद की जगह पास-पास में ही दो सूक्ष्म छेद बना दिये जायें, तो विवर्तन के स्वरूप समानांतर पट्टियों की एक शृंखला का रूप ग्रहण कर लेते हैं। ठीक उसी तरह, जिस तरह एक तैरने के तालाब में मिलनेवाली दो प्रकार की तरंगें, यदि दोनों के शीर्ष टकरा जायें तो एक-दूसरे को सहारा देती हैं और यदि एक का शीर्ष-भाग दूसरे के पिछले भाग से टकराता है, तो एक-दूसरे को काट देती हैं; पार्श्ववर्ती सूक्ष्म छेद के मामले में भी, जहाँ दो प्रकाश-तरंगें एक-दूसरे को सहारा देती हैं, वहाँ चमकीली पट्टियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और जहाँ दोनों तरंगें एक-दूसरे के विपरीत हो जाती हैं, वहाँ काली पट्टियों का प्रादुर्भाव हो जाता है। ये घटनाएँ–विवर्तन और व्यतिकरण (Diffraction and Interference)–विशुद्ध रूप से तरंगों की विशेषताएँ हैं और यदि प्रकाश का निर्माण पृथक्-पृथक् कणों से होता, तो ऐसा नहीं होता। दो शताब्दियों से भी अधिक समय के प्रयोगों और सिद्धान्तों से यही प्रकट हुआ है कि प्रकाश अवश्य ही तरंगों से बना है। फिर भी, आइन्स्टीन का प्रकाश-वैद्युत्-नियम यह प्रकट करता है कि प्रकाश में फोटोनों का अस्तित्व अवश्य ही है।

अतः इस मौलिक प्रश्न का उत्तर अब तक नहीं मिला कि प्रकाश तरंगों से बना है या कणों से ? फिर भी, प्रकाश का यह दुहरा स्वरूप सम्पूर्ण प्रकृति में व्याप्त गूढ़ और विशिष्ट द्विरूपता का केवल एक पहलू है।

× × ×

इस विचित्र द्विरूपता (Dualism) का प्रथम आभास सन् १९२५ में मिला, जब लुइ द' ब्रागली-नामक एक युवा फ्रांसीसी भौतिक विज्ञानवेत्ता ने यह सुझाव दिया कि पदार्थ और विकिरण की परस्पर-क्रीड़ा को तभी अच्छी तरह समझाया जा सकता है, जब विद्युत्-अणुओं को पृथक् अणुओं के रूप में नहीं, बल्कि तरंग-प्रणालियों के रूप में माना जाये। इस साहसपूर्ण मान्यता के कारण लगभग दो दशाब्दियों तक प्रमात्रा-अनुसंधान का कार्य चला, जिसके परिणामस्वरूप भौतिक विज्ञानवेत्ता पदार्थ के मूल कणों के बारे में अधिक विशिष्ट धारणाओं का निर्माण कर सके। परमाणु को, विभिन्न संख्यक (उद्जन के लिए १ और यूरेनियम के लिए ९२) विद्युत्-अणुओं से घिरे हुए एक परमाणु-केन्द्र से निर्मित, एक प्रकार की लघु-सौर-प्रणाली के रूप में पाया गया, जो गोलाकार या अण्डाकार धुरियों पर चक्कर लगाती थी। विद्युत्-अणु कम स्पष्ट था। परीक्षणों से यह प्रकट हुआ कि सभी विद्युत्-अणुओं में समान राशि (Mass) और विद्युत्-संचय (Electrical charge) रहता है, इसलिए उन्हें ब्रह्माण्ड की आधारशिलाओं के रूप में मानना सर्वथा स्वाभाविक था। पहले तो उन्हें केवल कठोर और लचीले मंडलों (Spheres) के रूप में मानना भी तर्कसंगत माना गया, लेकिन परीक्षणों के आगे बढ़ने के साथ, धीरे-धीरे, वे निरीक्षण और माप के लिए अयोग्य सिद्ध हुए। कई तरह से उनका कार्य-व्यापार प्रत्येक पदार्थीय कण के लिए अत्यन्त दुरूह प्रमाणित हुआ। ब्रिटिश भौतिक विज्ञानवेत्ता सर जेम्स जीन्स ने घोषणा की—"कठोर मण्डल का दिक् में सदा ही एक निश्चित स्थान रहता है, जबकि विद्युत्-अणु का नहीं। एक कठोर मण्डल (Sphere) एक निश्चित स्थान घेरता है और एक विद्युत्-अणु कितना स्थान घेरता है, इसकी चर्चा करना सम्भवतः उतना ही व्यर्थ है, जितना इस विषय पर बात करना कि भय, चिन्ता या अनिश्चितता कितना स्थान घेरती है।"

'पदार्थ-तरंगों' (Matter Waves) पर द' ब्रागली-द्वारा विचार प्रकट किये

जाने के कुछ ही समय बाद श्रोदिंगर-नामक एक वियेना-निवासी भौतिक विज्ञानवेत्ता ने उसी विचार को सुसंगत गणित के रूप में विकसित किया। इसके परिणामस्वरूप एक प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ, जो प्रमात्रा-सिद्धान्त की—प्रोटोनों और विद्युत्-कणों को विशिष्ट तरंग-क्रिया का रूप देकर—व्याख्या करने में समर्थ थी। 'तरंग-यांत्रिकता' (Wave Mechanics) नामक यह प्रणाली सन् १९२७ में पुष्ट हुई, जब डैविसन और गरमर नामक दो अमेरिकी वैज्ञानिकों ने प्रयोगों-द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि विद्युत्-अणुओं में वस्तुतः तरंगीय गुण होते हैं। उन्होंने एक धातु-स्फटिक पर विद्युत्-अणुओं की एक किरण डाली, जिसके फलस्वरूप ठीक उसी तरह के विवर्तनात्मक रूप प्रकट हुए, जैसे एक सूक्ष्म छेद से प्रकाश के गुजरने पर प्रकट होते हैं।[1] इसके अतिरिक्त उनके माप से यह प्रकट हुआ कि एक विद्युत्-अणु का तरंगदैर्घ्य उसी परिमाण का होता है, जिसकी भविष्यवाणी द' ब्रागली ने अपने समीकरण $\lambda = h/m\,v$ में की थी। इस समीकरण में v विद्युत्-अणु के वेग के लिए और m उसकी राशि के लिए प्रयुक्त हुआ है। h प्लैंक की स्थिर संख्या का द्योतक है। लेकिन और चमत्कार तो बाकी ही थे। परवर्ती परीक्षणों ने व्यक्त किया कि न केवल विद्युत्-अणु, बल्कि सम्पूर्ण परमाणु और अणु भी, किसी स्फटिक-धरातल से विवर्तित होने पर तरंग पैदा करते हैं और उनका तरंगदैर्घ्य भी ठीक वही होता है, जो ब्रागली और श्रोदिंगर ने बतलाया था। अतः पदार्थ की सभी मूल इकाइयाँ—जिन्हें जे. क्लर्क मैक्सवेल ने 'ब्रह्माण्ड की अविनाशी आधारशिलाएँ' के नाम से पुकारा था—क्रमशः अपना सारतत्त्व व्यक्त करने लगीं। अब पुरातन मण्डलीय विद्युत्-अणु, विद्युत्-शक्ति के कम्पायमान आवेष्टन में परिणत हो गया और परमाणु तरंगों की एक प्रणाली में। फलतः निष्कर्ष यही निकलता था कि सभी पदार्थ तरंगों से बने हैं और हम तरंगों की दुनिया में रहते हैं।

---

१. स्फटिक अपने अणुओं की समता, सुव्यवस्था और निकटता के कारण क्ष-किरणों-जैसे बहुत छोटे तरंगदैर्घ्यों के लिए विवर्तनीय वर्णजाल का काम करता है।

एक ओर पदार्थ में तरंगों के होने की बात और दूसरी ओर प्रकाश में कणों का अस्तित्व, इन दोनों के कारण उपस्थित होनेवाले विरोधाभास को द्वितीय विश्व-युद्ध के दस वर्ष पहले के कुछ विकास-कार्यों ने दूर किया। जर्मन भौतिक विज्ञानवेत्ताओं– हिजेनबर्ग और बौर्न– ने इस खाई को एक नया गणित-विषयक उपकरण प्रस्तुत करके पाट दिया। उसमें प्रमात्रा-तत्त्व का, तरंगों या कणों के रूप में– जैसी भी इच्छा की जाये– विवरण उपस्थित करने की क्षमता थी। उनकी प्रणाली के पीछे जो विचार था, उसका विज्ञान के दर्शन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उनका कहना था कि किसी भौतिक विज्ञानवेत्ता के लिए, इस बात की चिन्ता करना व्यर्थ है कि एक विद्युत्-अणु में कौन-कौन-से तत्त्व होते हैं। प्रयोगशाला में वह विद्युत्-अणुओं की– जिनमें से प्रत्येक में अरबों कण (या तरंगें) होते हैं– किरणों अथवा बौछारों के साथ काम करता है; इसलिए उसे केवल राशि-कार्यव्यापार (Mass Behaviour), आँकड़ों और सम्भावना तथा अवसर के नियमों के बारे में सोचना चाहिए। अतः विद्युत्-अणुओं में कण हैं या तरंगों की प्रणालियाँ, इससे कोई व्यावहारिक अन्तर नहीं पड़ता– कुल मिला कर, किसी भी रूप में उन्हें ग्रहण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि दो भौतिक विज्ञानवेत्ता सागर-तट पर हैं, तो एक सागर की तरंग के बारे में कह सकता है–"इसके तत्त्व और इसकी तीव्रता इसके शीर्ष और अन्तिम भाग की स्थितियों से स्पष्ट हो जाती है"; जबकि दूसरे का यह कहना भी उतना ही सही होगा कि "आप जिसे शीर्षभाग कहते हैं, वह केवल इसीलिए महत्वपूर्ण है कि दो तरंगों के मध्यभाग की तुलना में वहाँ पानी के कण अधिक मात्रा में हैं।" इसी प्रकार, जिस गणित-विषयक अभिव्यक्ति को श्रोदिंगर ने अपने समीकरणों में तरंग-क्रिया के रूप में प्रयुक्त किया था, उसे बौर्न ने परिगणन के अर्थ में 'सम्भावना' की संज्ञा दी। मतलब यह कि उसने एक तरंग के किसी भी अंग की तीव्रता को उस स्थान के कणों के सम्भावित विभाजन का मापदंड माना। इस प्रकार, उसने विवर्तन के विषय को,

जिसकी व्याख्या अब तक केवल तरंग-सिद्धान्त ही कर सकता था, कतिपय मार्गों से गुजरनेवाले और कतिपय स्थानों में पहुँचनेवाले कणों– हल्की प्रमात्रा या विद्युत्-अणु– की सम्भावना के अर्थ में निबटाया। और, इस प्रकार 'पदार्थ की तरंगें' 'सम्भावना की तरंगों' में बदल गयीं। अब यह प्रश्न ही नहीं उठता कि हम कैसे एक विद्युत्-अणु, या एक परमाणु, या एक सम्भावना की तरंग को देखते हैं। हिजेनबर्ग और बौर्न के समीकरण हर स्थिति में ठीक उतरते हैं। फलतः हम यह समझने को स्वतंत्र ह कि हम तरंगों के संसार में रहते हैं, या कणों के संसार में, या जैसा कि एक मसखरे वैज्ञानिक ने कहा था, दोनों के मिश्रण 'तरंकणों' (Wavicles) के संसार में।

—चार—

एक ओर जहाँ प्रमात्रा-भौतिक विज्ञान विकिरण और पदार्थ की मूल इकाइयों का संचालन करनेवाले गणित-विषयक सम्बन्धों की बड़ी कुशलता के साथ व्याख्या करता है, वहीं वह दोनों के सच्चे स्वरूप को गूढ़ भी बना देता है। लेकिन, अधिकांश आधुनिक भौतिक विज्ञानवेत्ता किसी पदार्थ के सच्चे स्वरूप के सम्बन्ध में अनुमान लगाने को बहुत आसान मानते हैं। वे लोग 'स्पष्टवादी' (Positivists)– या 'तर्कगत अनुभववादी' (Logical Empiricists)– हैं, जो यह कहते हैं कि एक वैज्ञानिक अपने पर्यवेक्षणों को प्रस्तुत करने के सिवा और कुछ नहीं कर सकता। इसलिए यदि वह अपने दो परीक्षण दो प्रकार के यंत्रों से सम्पन्न करता है, जिसमें एक यंत्र प्रकाश को कणों से निर्मित रूप में व्यक्त करता है और दूसरा उसके तरंगों से निर्मित होने की बात बतलाता है, तो उसे उन दोनों को परस्पर-विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर-पूरक स्वीकार करना चाहिए।

अलग-अलग इन दोनों में से कोई भी प्रकाश की व्याख्या करने में असमर्थ है, पर साथ मिल कर वे ऐसा करने में समर्थ हो जाते हैं। सत्य की व्याख्या करने के लिए दोनों ही महत्वपूर्ण हैं और यह प्रश्न निरर्थक है कि इन दोनों में से कौन वस्तुतः सत्य है। प्रमात्रा-भौतिक विज्ञान के भाववाचक कोश में 'वस्तुतः' नामक कोई शब्द नहीं है।

इसके अतिरिक्त, यह आशा करना भी घातक साबित होगा कि और अधिक सूक्ष्म यंत्रों के निर्माण से मनुष्य सूक्ष्म-जगत् में अधिक गहराई से प्रवेश पा सकेगा। परमाणु-सम्बन्धी ब्रह्माण्ड की सभी घटनाओं के बारे में एक ऐसी अनिश्चितता है, जो माप और पर्यवेक्षण के सुधार से दूर नहीं हो सकती। परमाणु-सम्बन्धी व्यापार के चंचल-तत्त्व के लिए मानव के असूक्ष्म यंत्रों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। जैसा कि सन् १९२७ में हिजेनबर्ग ने 'अनिश्चितता का सिद्धान्त' (Principle of Uncertainty) नामक एक प्रसिद्ध भौतिक नियम-विषयक वक्तव्य में बताया था, वस्तुओं की मूल प्रकृति से ही यह कार्य-व्यापार पृथक् है। अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिए हिजेनबर्ग ने एक काल्पनिक परीक्षण को चित्रित किया, जिसमें एक भौतिक विज्ञानवेत्ता एक अत्यधिक शक्ति-सम्पन्न सूक्ष्मवीक्षण-यंत्र (Microscope) की सहायता से एक गतिशील विद्युत्-अणु की स्थिति और वेग[1] का निरीक्षण करने का प्रयत्न करता है। एक भौतिक विज्ञानवेत्ता विद्युत्-अणु के कार्य-व्यापार की तभी तक ठीक-ठीक व्याख्या कर सकता है, जब तक वह उनकी बड़ी संख्या के साथ सम्बन्ध रखता है। लेकिन जब वह केवल एक विद्युत्-अणु को दिक् में स्थापित करने का प्रयत्न करता है, तो अधिक-से-अधिक यही कह सकता है कि विद्युत्-अणु-समूह की दुरूह तरंगीय गतियों का कोई एक अंश विद्युत्-अणु की सम्भावित स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है। अकेला विद्युत्-कण केवल एक धब्बा है– उतना ही अनिश्चित-सा, जितना रात में

१. भौतिक विज्ञान में 'गति' शब्द दिशा और गति, दोनों को प्रकट करता है।

पवन या ध्वनि-तरंगें होती हैं– और जितने कम विद्युत्-अणुओं के साथ वह भौतिक परीक्षण करता है, उतने ही अनिश्चित परिणाम उसे उपलब्ध होते हैं। यह प्रमाणित करने के लिए कि यह अनिश्चितता मनुष्य के अविकसित विज्ञान की नहीं, बल्कि प्रकृति की अनिवार्य बाधा की परिचायिका है, हिजेनबर्ग ने यह कल्पना की कि उस कल्पित भौतिक विज्ञानवेत्ता-द्वारा उपयोग में लाया गया कल्पित सूक्ष्मवीक्षण-यंत्र दस खरब बड़े आकार में किसी पदार्थ को उपस्थित कर सकता है, अर्थात् उसकी सहायता से विद्युत्-अणु के आकार के किसी पदार्थ को मनुष्य अपनी आँखों से देख सकता है। लेकिन तब एक नयी कठिनाई पैदा हो जाती है। चूँकि एक विद्युत्-कण एक प्रकाश-तरंग से भी छोटा होता है, अतः भौतिक विज्ञानवेत्ता केवल एक लघुतर तरंगदैर्घ्य के विकिरण का प्रयोग करके ही अपने परीक्षण-पदार्थ को प्रकाशित कर सकता है; इसमें क्ष-किरणें तक व्यर्थ हैं। विद्युत्-अणु रेडियम की उच्च आवृत्तिवाली गामा-किरणों के द्वारा ही दर्शनीय बनाया जा सकता है। लेकिन यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि प्रकाश-वैद्युत्-प्रभाव से यह प्रकट हुआ कि सामान्य प्रकाश के फोटोन विद्युत्-अणुओं को एक जोर का धक्का देते हैं और क्ष-किरणें तो उन्हें और भी जोरदार धक्का देती हैं। इसलिए अधिक शक्ति-सम्पन्न गामा-किरण का आघात तो उनके लिए और भी घातक साबित होगा।

इस प्रकार, अनिश्चितता का सिद्धान्त यह प्रकट करता है कि किसी विद्युत्-अणु की स्थिति और वेग को एक साथ निश्चित करना– विश्वासपूर्वक यह कह सकना कि विद्युत्-अणु ठीक इस स्थान पर है और इस गति से घूम रहा है– पूर्णतः असम्भव है; क्योंकि उसकी स्थिति को देखने की क्रिया के साथ उसका वेग परिवर्तित हो जाता है और दूसरी ओर, यदि उसकी गति का ठीक-ठीक निश्चय किया जाता है, तो उसकी स्थिति अनिश्चित हो जाती है। और, जब भौतिक विज्ञानवेत्ता किसी विद्युत्-अणु की स्थिति और वेग की पैमाइश में अनिश्चितता की गणित-विषयक छूट का हिसाब लगाता है, तो

पाता है कि वह उस रहस्यमय परिमाण—प्लैंक की स्थिर संख्या h— की ही करामात है।

× × ×

इस तरह प्रमात्रा-भौतिक विज्ञान पुरातन विज्ञान के दो स्तम्भों— हेतुवाद (Causality) और निर्धारणवाद (Determinism)—को नष्ट कर देता है। गणनाओं और सम्भावनाओं के अर्थ में कार्यरत होने पर यह इस विचार को पूर्णतः तिलांजलि दे देता है कि प्रकृति कारण और कार्य की एक अविचल परम्परा को व्यक्त करती है। और, अनिश्चितता की छूटों को स्वीकार करने पर यह इस पुरातन आशा को स्वीकार कर लेता है कि ब्रह्माण्ड के प्रत्येक भौतिक रूप की वर्तमान अवस्था और गति को जान लेने पर विज्ञान ब्रह्माण्ड के इतिहास के बारे में सर्वदा के लिए भविष्यवाणी कर सकता है। इस आत्म-समर्पण के प्रसंग से एक ऐसी बात पैदा होती है, जो उन्मुक्त इच्छा के अस्तित्व के लिए एक नया तर्क है। यदि प्राकृतिक घटनाएँ अनिश्चित हैं और भविष्य की पूर्वघोषणा नहीं की जा सकती, तो सम्भव है कि अज्ञात परिमाण, जिसे 'मानस' कहते हैं, मनुष्य के लक्ष्य को अस्थिर ब्रह्माण्ड की गहरी अनिश्चितताओं के बीच ले जाये। लेकिन यह धारणा उस विचार-क्षेत्र पर आक्रमण करती है, जिससे भौतिक विज्ञानवेत्ता को कोई मतलब नहीं होता। एक दूसरा निष्कर्ष, जिसका वैज्ञानिक महत्व और भी अधिक है, यह है कि प्रमात्रा-भौतिक विज्ञान के विकास से, अपनी इन्द्रियों की घनाच्छादित खिड़कियों से झाँकनेवाले मनुष्य और किसी भी भौतिक यथार्थता के बीच जो भी बाधाएँ हैं, वे लगभग अभेद्य बन गयी हैं ; क्योंकि जब भी वह 'यथार्थ' भौतिक संसार में प्रवेश करने पर उसका पता लगाने का प्रयत्न करता है, तो अपनी दृष्टि-प्रणाली से उसकी क्रियाओं को परिवर्तित कर देता है या बिगाड़ देता है। और, जब वह अपनी इन्द्रिय-अनुभूतियों से इस 'यथार्थ' को हटा देने का प्रयत्न करता है, तो उसके पास एक गणित-योजना के सिवा कुछ नहीं बच

जाता। वास्तव में, उसकी स्थिति उस अंधे के समान है, जो एक बर्फ के टुकड़े के स्वरूप और रचना-तत्त्वों को जानने का प्रयत्न करता है। जैसे ही बर्फ उसकी अँगुलियों या जीभ का स्पर्श पाती है, गल जाती है। एक तरंगीय विद्युत्-कण, फोटोन या सम्भावना की तरंग देखी नहीं जा सकती ; ये सब सूक्ष्म-संसार के गणित-विषयक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति में सहायक होनेवाले प्रतीक-मात्र हैं।

आधुनिक भौतिक विज्ञान विवरण को ऐसी गुप्त प्रणालियाँ क्यों अपनाता है, इस प्रश्न के उत्तर में भौतिक विज्ञानवेत्ता कहता है—"ऐसा इसलिए करना पड़ता है कि दृष्टि-सीमा से परे की मौलिक घटनाओं की, किसी भी यांत्रिक स्वरूप की अपेक्षा प्रमात्रा-भौतिक विज्ञान के समीकरण अधिक शुद्ध व्याख्या करने में समर्थ हैं।" संक्षेप में वे अपना काम ठीक करते हैं, जैसा कि अणु-बम-सम्बन्धी गणनाओं के क्षेत्र में स्पष्टतः प्रमाणित हो गया है। इसलिए क्रियाशील भौतिक विज्ञानवेत्ता का लक्ष्य प्रकृति के नियमों को अधिकाधिक विशिष्ट गणित के रूप में प्रकट करना है। जबकि १९ वीं शताब्दी के भौतिक विज्ञान-वेत्ता ने विद्युत् को एक तरल रूप में देखा और इस लक्षण को मानस में रख कर उन नियमों को निर्धारित किया, जिनके कारण आज का युग विद्युत्-युग बन गया, तब २० वीं शताब्दी का भौतिक विज्ञानवेत्ता उन लक्षणों का बहिष्कार-सा करता प्रतीत होता है। वह जानता है कि विद्युत् कोई तरल पदार्थ नहीं है। साथ ही, उसकी धारणा है कि 'तरंगों' और 'कणों'-जैसी चित्रमय धारणाएँ भले ही नये आविष्कारों के लिए निर्देश-स्तम्भ का काम दें, किन्तु उन्हें 'यथार्थ' के सही प्रतिनिधित्व के लिए स्वीकृत नहीं करना चाहिये। गणित की भावपूर्ण भाषा में वह यह बतला सकता है कि पदार्थ कार्य-व्यापार कैसे करते हैं, भले ही वह यह नहीं जानता—और न जानने की जरूरत है—कि वे हैं क्या ?

फिर भी, आज के भौतिक विज्ञानवेत्ताओं के समक्ष विज्ञान और यथार्थ के बीच की रिक्तता एक चुनौती-स्वरूप है। आइन्स्टीन ने कई बार यह आशा

प्रकट की थी कि प्रमात्रा-भौतिक विज्ञान की गणना-प्रणाली एक अस्थायी उपकरण साबित होगी। उन्होंने कहा था–"मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि ईश्वर संसार के साथ दाँव खेलता है।" उन्होंने इस स्पष्टवादी सिद्धान्त का भी खंडन किया कि विज्ञान केवल परीक्षण के परिणामों का विवरण दे सकता है और उनका परस्पर-सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। वे एक व्यवस्थित और शांतिपूर्ण ब्रह्माण्ड में विश्वास करते थे। साथ ही, उन्हें यह भी विश्वास था कि जिज्ञासु मानव प्राकृतिक यथार्थ का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसके लिए उन्होंने परमाणु के अन्दर नहीं, बल्कि बाहर सितारों को तथा उनके भी आगे शून्य दिक् और काल की अतल गहराइयों की ओर दृष्टिपात किया था।

— पाँच —

दार्शनिक जान लाक ने अपने ग्रन्थ 'आन ह्यूमन अण्डरस्टैंण्डिग' में आज से तीन सौ वर्ष पहले लिखा था—"शतरंज के कुछ मोहरों को ठीक उन्हीं घरों में देख कर, जिनमें हमने उन्हें छोड़ा था, हम कहते हैं कि वे अपने पूर्वस्थान में हैं अथवा अपने स्थान से हटे नहीं हैं, जबकि सम्भवत: उतने समय में स्वयं शतरंज के घर ही इस कमरे से उस कमरे में पहुँच जाते हैं. . . .हम यह भी कहते कि शतरंज का बोर्ड अपने स्थान पर ही रखा है (यदि उसको जहाज के केबिन के उसी भाग में रखा देखते हैं, जहाँ हमने उसे रखा था), जबकि वह जहाज, जिस पर वह केबिन बना है, सदा चलता रहता है; और हम जहाज को अचल मानते हैं, यदि उसे निकटवर्ती तट से समान दूरी पर खड़ा पाते हैं, किन्तु तब तक स्वयं पृथ्वी काफी घूम चुकी होती है अथवा स्थान-परिवर्तन कर चुकी होती है। इस प्रकार शतरंज के मोहरे, बोर्ड और जहाज,सभी सूक्ष्म पदार्थों की तुलना में अपना स्थान-परिवर्तन कर चुके होते हैं।"

गतिशील परन्तु अविचलित शतरंज के मोहरों के इस लघुचित्र में सापेक्षवाद का एक सिद्धान्त—स्थिति की सापेक्षता—निहित है। लेकिन यह एक अन्य विचार—गति की सापेक्षता— को भी प्रकट करता है। रेलगाड़ी पर चढ़नेवाले प्रत्येक व्यक्ति को यह मालूम है कि विपरीत दिशा में जानेवाली गाड़ी कितनी तेजी से गुजर जाती है; लेकिन यदि दूसरी गाड़ी भी उसी दिशा में जाती होती है, जिधर उसकी गाड़ी जाती है, तो वह लगभग गतिहीन-सी प्रतीत होती है। इस प्रभाव का अंतर न्यूयार्क के 'ग्रैण्ड सेण्ट्रल टर्मिनल'-जैसे किसी स्टेशन में भ्रमात्मक हो सकता है। कभी-कभी कोई गाड़ी इस खूबी से चलती है कि यात्रियों को किसी तरह की हलचल का आभास तक नहीं मिलता। तब वैसी गाड़ी पर सवार कोई यात्री यदि खिड़की के बाहर झाँके और बगल की पटरी पर अन्य गाड़ी को देखे, तो वह इस निश्चय पर नहीं पहुँच सकता कि कौन-सी गाड़ी चल रही है और कौन खड़ी है। वह यह भी नहीं कह सकता कि कौन गाड़ी कितनी रफ्तार से और किस दिशा में चल रही है। वैसी स्थिति में, वास्तविकता से परिचित होने का केवल एक रास्ता रह जाता है— डिब्बे के दूसरी ओर किसी स्थिर वस्तु को देखना, जैसे प्लेटफार्म या सिग्नल को। सर इसाक न्यूटन गतिशीलता के इन छलों से परिचित थे। वे केवल जहाजों को लेकर इस सम्बन्ध में सोचते थे। वे जानते थे कि एक शांतिपूर्ण दिन में जहाज का नाविक सागर में चलते हुए भी ठीक उसी आराम के साथ दाढ़ी बना सकता है, या भोजन कर सकता है, जिस आराम के साथ वह बंदरगाह में जहाज के खड़े रहने की स्थिति में करता है। चाहे जहाज ६ मील की रफ्तार से चले, या १८ मील की, या ३० मील की, उसके बर्तन का पानी और कटोरे का रसपूर्ण साग स्थिर रहेगा। अतः जब तक वह समुद्र पर दृष्टिपात नहीं करता, तब तक इस बात का अन्दाज नहीं लगा सकता कि जहाज किस रफ्तार से चल रहा है, अथवा चल भी रहा है या नहीं? हाँ, यदि सागर अशान्त होगा और जहाज प्रायः अपना रुख बदलता रहेगा, तो वह गति के सम्बन्ध में अनुमान पा लेगा;

लेकिन यदि सागर पूर्णतः शान्त होगा और जहाज की गति भी शान्त होगी, तो डेक के नीचे की गतिविधियों के वेग का जहाज के अन्दर होनेवाले निरीक्षण या यांत्रिक परीक्षण की किसी भी मात्रा से पता नहीं लगाया जा सकेगा। इन बातों को ध्यान में रखते हुए न्यूटन ने सन् १६८७ में अपना भौतिक सिद्धान्त प्रकाशित किया। उसने लिखा —"एक निश्चित दिक् में निहित पदार्थों की गतियाँ अपने उसी स्वरूप में होती हैं, चाहे आकाश स्थिर हो, या एक सीधी दिशा में सम-भाव से बढ़ रहा हो।" यह सिद्धान्त न्यूटन या गैलिलियो के 'सापेक्ष-सिद्धान्त' के रूप में प्रसिद्ध है। इसे और अधिक सीधे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है– एक जगह जो यांत्रिक नियम मान्य हैं, वे उसी तरह की गतिवाली किसी भी दूसरी जगह में मान्य होंगे।

इस सिद्धान्त का दार्शनिक महत्व, ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी इसके कथनों में निहित है। चूँकि विज्ञान का उद्देश्य संसार की, उसके सम्पूर्ण अथवा आंशिक स्वरूपों में, व्याख्या करना है, अतः वैज्ञानिक के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रकृति की एकात्मता (Harmony) में विश्वास रखे। उसे इस बात का, निश्चय ही, विश्वास होना चाहिये कि पृथ्वी पर उसके समक्ष जो भी प्राकृतिक नियम व्यक्त हुए हैं, वे वस्तुतः ब्रह्माण्डीय नियम हैं। अतः किसी सेव के पेड़ से टूट कर नीचे गिरने से लेकर सूर्य के चारों ओर नक्षत्रों के चक्कर काटने तक के वर्णन में न्यूटन ने ब्रह्माण्डीय नियम का सहारा लिया। यद्यपि उसने सापेक्ष गति के अपने सिद्धान्त को चित्रित करने के लिए सागर-स्थित जहाज का सहारा लिया, तथापि उसके मानस में वास्तविक जहाज के रूप में पृथ्वी थी। विज्ञान के सभी सामान्य कार्यों के लिए पृथ्वी को एक स्थिर प्रणाली के रूप में माना जा सकता है। यदि हम चाहें, तो कह सकते हैं कि पर्वत, वृक्ष और मकान स्थिर हैं और पशु, गाड़ियाँ और विमान गतिशील हैं। लेकिन नभोवस्तुवेत्ता (Astrophysicist) के लिए पृथ्वी न केवल अस्थिर है, बल्कि दिक् में तेज और दुरूह रूप से चक्कर काटनेवाली भी है। प्रति दिन

अपनी धुरी पर एक हजार मील प्रति घंटा की गति से तथा वर्ष-भर में प्रति सेकण्ड २० मील की गति से सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने के अतिरिक्त, वह कुछ अन्य प्रकार के चक्कर भी लगाती है, जिनका ज्ञान लोगों को बहुत कम है। साधारण मान्यता के विपरीत, चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर नहीं घूमता, बल्कि वे दोनों ही एक-दूसरे की परिक्रमा करते हैं या गुरुत्वाकर्षण के एक सामान्य केन्द्र के चारों ओर घूमते हैं। सम्पूर्ण सौर-प्रणाली भी स्थानीय नक्षत्र-प्रणाली (Local Star System) के अन्तर्गत प्रति सेकण्ड १३ मील की गति से घूम रही है, स्थानीय नक्षत्र-प्रणाली आकाशगंगा (Milky Way) के अन्तर्गत प्रति सेकण्ड २०० मील की रफ्तार से चल रही है और सम्पूर्ण आकाशगंगा दूरस्थ बाह्य ज्योतिर्मालाओं के अन्तर्गत प्रति सेकण्ड १०० मील की रफ्तार से विभिन्न दिशाओं में घूम रही है।

यद्यपि पृथ्वी की गतिविधियों की सम्पूर्ण दुरूहता से उस समय न्यूटन परिचित नहीं था, तथापि उसे सापेक्ष गति और उलझनपूर्ण ब्रह्माण्ड की यथार्थ गति के अन्तर को समझने में काफी परेशान होना पड़ा। उसने कहा—"स्थिर सितारों के अति दूरस्थ प्रदेशों में या उनसे भी आगे कोई वस्तु पूर्णतः स्थिर हो सकती है।" लेकिन उसने स्वीकार किया कि इस कथन को प्रमाणित करने के लिए कोई दिव्य वस्तु मनुष्य के दृष्टि-क्षेत्र में नहीं है। दूसरी ओर, न्यूटन ने यह भी अनुभव किया कि आकाश स्वयं ही एक स्थिर ढाँचे का काम दे सकता है और उससे नक्षत्रों और ज्योतिर्मालाओं के चक्करों को विशुद्ध गति के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। उसने दिक् को एक प्राकृतिक यथार्थता, स्थिरता और अविचलता के रूप में माना और चूँकि इस मान्यता के समर्थन के लिए उसके पास कोई वैज्ञानिक तर्क नहीं था, उसने आध्यात्मिक आधारों पर इसका अनुसरण किया। न्यूटन के मत से दिक् प्रकृति में ईश्वर की दिव्य सर्वव्यापकता के प्रतिनिधि के रूप में था।

परवर्ती दो शताब्दियों में यह सम्भावना प्रकट हुई कि न्यूटन की मान्यता सही

साबित होगी। प्रकाश के तरंग-सिद्धान्त के विकास के साथ, वैज्ञानिकों ने यह आवश्यक समझा कि शून्य दिक् को कतिपय यांत्रिक तत्त्वों से सम्पन्न माना जाये। इसलिए अनुभव किया गया कि दिक् को किसी प्रकार के तत्त्व से निर्मित समझा जा सके। न्यूटन के समय से पहले, फ्रांसीसी दार्शनिक डेकार्टे ने भी यह तर्क उपस्थित किया था कि दूर होने के कारण वस्तुओं का बिलगाव ही यह प्रमाणित करता है कि उनके बीच कोई माध्यम विद्यमान है। और, १८ वीं एवं १९ वीं शताब्दी के भौतिक विज्ञानवेत्ताओं के समक्ष यह स्पष्ट हो गया कि यदि प्रकाश में तरंगें होती हैं, तो उनका कुछ आधार भी होगा; जैसे पानी सागर की तरंगों को पैदा करता है और हवा उन कम्पनों को जन्म देती है, जिन्हें हम ध्वनि कहते हैं। अतः जब परीक्षणों से यह व्यक्त हुआ कि प्रकाश शून्य से भी होकर विचर सकता है, तब वैज्ञानिकों ने 'ईथर' (Ether) नामक एक काल्पनिक तत्त्व को जन्म दिया, जो उनके विचार में, समस्त दिक् और पदार्थ में व्याप्त है। बाद में, फैरेडे ने एक अन्य किस्म के ईथर का प्रतिपादन किया, जिसे विद्युत् एवं चुम्बकीय शक्तियों के वाहक के रूप में माना गया। जब मैक्सवेल ने अन्ततः प्रकाश को एक 'विद्युत-चुम्बकीय विक्षोभ' (Electromagnetic Disturbance) के रूप में मान्यता प्रदान की, तब ईथर का अस्तित्व निश्चित-सा हो गया।

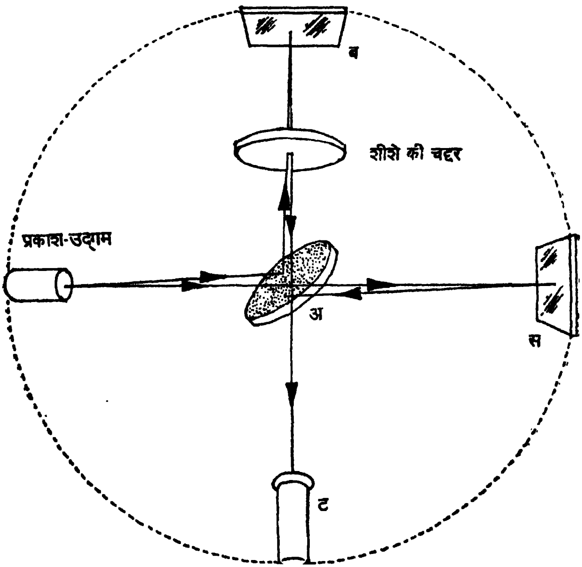
× × ×

न्यूटन के भौतिक विज्ञान का अन्तिम निष्कर्ष था एक ब्रह्माण्ड, जो एक ऐसे अदृश्य माध्यम से सम्बद्ध है, जिसमें नक्षत्र गतिशील हैं और जिससे हो कर प्रकाश कम्पनों के रूप में विचरता है। इसमें प्रकृति के सभी ज्ञात तत्त्वों के लिए एक यांत्रिक स्वरूप और आधार के लिए स्थिर ढाँचे– विशुद्ध और स्थिर दिक्– की व्यवस्था थी, जिनकी न्यूटन के विश्व-विज्ञान (Cosmology) को आवश्यकता थी। फिर भी ईथर के कारण कई समस्याएँ उपस्थित हुईं; क्योंकि उसका अस्तित्व कभी प्रमाणित नहीं हो सकता था। इस बात का पता

लगाने के लिए कि वस्तुतः ईथर नाम की किसी वस्तु का कोई अस्तित्व है भी या नहीं, दो अमेरिकी भौतिक विज्ञानवेत्ताओं— ए.ए. मिचेलसन और ई. डब्ल्यू. मोरले— ने क्लीवलैण्ड में सन् १८८१ में एक भव्य परीक्षण किया।

उनके परीक्षण के पीछे निहित सिद्धान्त काफी सीधा था। उनका तर्क था कि यदि सम्पूर्ण दिक् केवल ईथर का एक गतिहीन सागर है, तो ईथर के बीच पृथ्वी की गति का ठीक उसी तरह पता लगना चाहिये और पैमाइश होनी चाहिये, जिस तरह नाविक सागर में जहाज के वेग को मापते हैं। जैसा कि न्यूटन ने इंगित किया था, जहाज के अन्दर के किसी यांत्रिक परीक्षण-द्वारा शान्त जल में चलनेवाले जहाज की गति मापना असम्भव है। नाविक जहाज की गति का अनुमान सागर में एक लट्ठा फेंक कर और उससे बँधी रस्सी की गाँठों के खुलने पर नजर रख कर लगाते हैं। अतः ईथर के सागर में पृथ्वी की गति का अनुमान लगाने के लिए, मिचेलसन और मोरले ने लट्ठा फेंकने की क्रिया सम्पन्न की। अवश्य ही, यह लट्ठा प्रकाश की किरण के रूप में था! यदि प्रकाश सचमुच ईथर में फैलता है, तो इसकी गति पर, पृथ्वी की गति के कारण उत्पन्न , ईथर की धारा का प्रभाव पड़ना चाहिये। विशेष तौर पर, पृथ्वी की गति की दिशा में फेंकी गयी प्रकाश-किरण में ईथर की धारा से उसी तरह हल्की बाधा पहुँचनी चाहिये, जैसी बाधा का सामना एक तैराक को धारा के विपरीत जाते समय करना पड़ता है। इसमें अन्तर बहुत थोड़ा होगा, क्योंकि प्रकाश का वेग (जिसका ठीक-ठीक निश्चय सन् १८४९ में हुआ) एक सेकण्ड में १,८६,२८४ मील है, जबकि सूर्य के चारों ओर अपनी धुरी पर पृथ्वी का वेग केवल २० मील प्रति सेकण्ड होता है। अतएव ईथर-धारा की विपरीत दिशा में फेंके जाने पर प्रकाश-किरण की गति १,८६,२६४ मील होनी चाहिये और यदि सीधी दिशा में फेंकी जाये, तो १,८६,३०४ मील। इन विचारों को मस्तिष्क में रख कर मिचेलसन और मोरले ने एक यंत्र का निर्माण किया, जिसकी सूक्ष्मदर्शिता इस हद तक पहुँची हुई थी कि वह प्रकाश के तीव्र

वेग में प्रति सेकण्ड एक मील के अंतर को भी अंकित कर लेता था। इस यंत्र में, जिसे उन्होंने 'व्यतिकरणमापक' (Interferometer) नाम दिया, कुछ दर्पण इस तरह लगाये हुए थे कि एक प्रकाश-किरण को दो भागों में बाँटा जा सकता था और एक साथ ही दो दिशाओं में उन्हें फेंका जा सकता था।



मिचेलसन-मोरले के 'व्यतिकरणमापक' यंत्र में दर्पणों का ऐसा प्रबन्ध था कि एक प्रकाश-उद्गम (ऊपर दिये हुए चित्र की बायीं ओर) से छोड़ी गयी किरण दो भागों में विभाजित होकर एक साथ ही दो दिशाओं में चली जाती थी। यह काम एक दर्पण 'अ' करता था, जिसके अग्रभाग में पारे की हल्की परत थी। इससे होकर किरण

का एक भाग सीधे दर्पण 'स' तक पहुँच जाता था और बाकी भाग दाहिने मुड़ कर दर्पण 'ब' तक पहुँचता था। फिर 'ब' और 'स' दर्पण उन किरणों को वापस दर्पण 'अ' को भेज देते थे, जहाँ वे पुनः एक साथ मिल जाती थीं और वहाँ से पर्यवेक्षणजन्य सूक्ष्मवीक्षण यंत्र 'ट' तक पहुँचती थीं। चूँकि अ स ट किरण को तीन बार, दर्पण 'अ' के प्रतिभासक अग्रभाग के पीछे के शीशेवाले भाग की सघनता से होकर गुजरना पड़ता था, अतः उतनी ही सघनतावाला एक शीशा अ ब ट किरण के लिए 'अ' और 'ब' दर्पणों के बीच भी रखा गया। यह सम्पूर्ण यंत्र विभिन्न दिशाओं में चक्कर लगाता रहता था, जिसमें कि अ ब ट और अ स ट किरणें ईथर-धारा के अनुकूल और प्रतिकूल दिशाओं में फेंकी जा सकें। पहली बार देखने में ऐसा लग सकता है कि धारा के अनुकूल जाने में—उदाहरणस्वरूप 'ब' से 'अ' की ओर जाने में होनेवाली शीघ्रता धारा के विपरीत 'अ' से 'ब' की ओर जाने में लगनेवाले विलम्ब के कारण बराबरी पर आ जायेगी; लेकिन ऐसा नहीं है। कोई नाव, जो एक मील धारा के विपरीत जाये और फिर एक मील उसके अनुकूल चले, शान्त जल में चलनेवाली नाव की तुलना में, अधिक देर में दो मील का सफर तय करेगी। यदि किसी भी किरण में ईथर-धारा शीघ्रता और विलम्ब लाती, तो पर्यवेक्षण-यंत्र 'ट' उसका पता पा लेता।

यह सारा परीक्षण इतनी सावधानी से आयोजित और पूरा किया गया कि इसके परिणामों में किसी तरह के संदेह की गुंजायश नहीं रह गयी। इसका परिणाम सीधे-सादे शब्दों में यह निकला—"प्रकाश-किरणों के वेग में, चाहे वे किसी भी दिशा में फेंकी गयी हों, कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

मिचेलसन और मोरले के परीक्षण के कारण वैज्ञानिकों के सामने एक व्याकुल कर देनेवाला विकल्प आया। उनके सामने यह समस्या थी कि वे

डा. आइन्स्टीन और ब्रह्माण्ड

ईथर-सिद्धान्त को– जिसने विद्युत्, चुम्बकत्व और प्रकाश के बारे में बहुत-सी बातें बतलायी थीं– छोड़े या उससे भी अधिक मान्य कोपरनिकन-सिद्धान्त को, जिसके अनुसार पृथ्वी स्थिर नहीं, गतिशील है। बहुत-से भौतिक विज्ञान-वेत्ताओं को ऐसा लगा कि यह विश्वास करना अधिक आसान है कि पृथ्वी स्थिर है, बनिस्बत इसके कि तरंगें– प्रकाश-तरंगें, विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें– बिना किसी सहारे के अस्तित्व में रह सकती हैं। यह एक बड़ी विकट समस्या थी– इतनी विकट कि इसके कारण वैज्ञानिक विचारधारा २५ वर्षों तक भिन्न-भिन्न रही, एकमत न हो सकी। कई नयी कल्पनाएँ सामने प्रस्तुत की गयीं और रद्द भी कर दी गयीं। उस परीक्षण को मोरले और दूसरे लोगों ने फिर शुरू किया, पर नतीजा वही निकला– ईथर में पृथ्वी का प्रत्यक्ष वेग शून्य है।

— छः —

जिन लोगों ने मिचेलसन और मोरले के परीक्षण के परिणामस्वरूप उत्पन्न गूढ़ पहेली पर विचार किया, उनमें से एक युवा अल्बर्ट आइन्स्टीन भी थे, जो उस समय बर्न के पेटेण्ट आफिस में परीक्षक थे। सन् १९०५ में, जब वे केवल २६ वर्ष की उम्र के थे, उन्होंने इस पहेली का एक समाधान प्रकाशित किया, जिसके कारण भौतिक विज्ञान-सम्बन्धी विचार-धारा में एक नये वातावरण की सृष्टि हुई। उन्होंने ईथर-सिद्धान्त के साथ-साथ, ढाँचे या एक स्थिर प्रणाली के रूप में दिक् की अवस्थिति की धारणा को भी— जिसके अन्तर्गत निरपेक्ष को सापेक्ष गति से पृथक् करना सम्भव है— अस्वीकार कर दिया। मिचेलसन और मोरले के परीक्षण के द्वारा एक निर्विवाद तथ्य निर्धारित हुआ था; वह यह कि पृथ्वी की गति से प्रकाश का वेग प्रभावित नहीं होता। आइन्स्टीन ने इसे एक प्राकृतिक नियम का उद्घाटन माना। उनका तर्क था कि यदि प्रकाश का वेग स्थिर है और पृथ्वी की गति से प्रभावित नहीं होता,

तो सूर्य, चंद्रमा, सितारे, नक्षत्र या ब्रह्माण्ड की किसी अन्य गतिशील प्रणाली से भी वह प्रभावित नहीं होगा। इसे उन्होंने और भी आगे बढ़ाया और कहा कि सभी एकरूप गतिशील प्रणालियों के लिए प्रकृति के नियम समान हैं। यही सीधी-सी बात आइन्स्टीन के 'विशिष्ट सापेक्ष-सिद्धान्त' का सरल तत्त्व है। इसमें गैलिलियो का सापेक्ष-सिद्धान्त भी शामिल है, जिसमें कहा गया था *कि सभी एकरूप गतिशील प्रणालियों के लिए यांत्रिक नियम एक समान हैं।* किन्तु इसका वाक्य-विन्यास अधिक विस्तृत है, क्योंकि आइन्स्टीन न केवल यांत्रिक नियमों के बारे में, बल्कि प्रकाश को संचालित करनेवाले एवं अन्य विद्युत्-चुम्बकीय नियमों के बारे में भी सोच रहे थे। अतः उन्होंने उन सब को एक साथ एक आधारभूत स्वयंसिद्ध प्रमाण के रूप में माना—"प्रकृति के सभी तत्त्व— उसके सभी नियम— उन सभी प्रणालियों के लिए एक समान हैं, जो एक-दूसरे से मिले हुए एक साथ गतिमान हैं।"

ऊपर से इस घोषणा में कोई अद्भुत बात नहीं दिखाई पड़ती। यह केवल प्राकृतिक नियम की ब्रह्माण्डीय एकात्मता में वैज्ञानिक के विश्वास को प्रकट करती है। साथ ही, वैज्ञानिक को परामर्श देती है कि वह ब्रह्माण्ड में किसी निरपेक्ष स्थिर ढाँचे की खोज में व्यस्त न हो। ब्रह्माण्ड एक अस्थिर स्थान है; तारे, तेजोमेघ (Nebulae), ज्योतिर्मंडल और बाह्य आकाश की सभी वृहत् गुरुत्वाकर्षण-प्रणालियाँ निरंतर गतिशील हैं। लेकिन उनकी गतिविधियों को उनके परस्पर-सम्बन्धों के रूप में ही व्यक्त किया जा सकता है; क्योंकि दिक् में न तो दिशाएँ हैं और न सीमाएँ ही। साथ ही, प्रकाश को मापदण्ड मान कर किसी प्रणाली के 'सही' वेग की जानकारी का प्रयत्न करना वैज्ञानिक के लिए निरर्थक है; क्योंकि प्रकाश का वेग सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्थिर है और इस पर न तो इसके उद्गम की गति का असर पड़ता है और न इसके ग्राहक की गति का। प्रकृति, तुलना के लिए किसी भी निरपेक्ष मानदंड की सुविधा नहीं देती और दिक्, जैसा कि आइन्स्टीन से दो शताब्दी पहले एक अन्य महान् जर्मन

गणितज्ञ लिबनिज ने स्पष्टत: अनुभव किया था–"स्वयं वस्तुओं का अपना एक क्रम या सम्बन्ध है। इसमें निहित वस्तुओं के अभाव में यह कुछ भी नहीं है।"

निरपेक्ष दिक् के साथ-साथ, आइन्स्टीन ने निरपेक्ष काल की धारणा का भी परित्याग किया। इस धारणा के अनुसार, काल अनादि भूत से अनंत भविष्य के बीच की एक स्थिर, अपरिवर्तनीय, *अप्रभावित और सर्वव्यापक काल-धारा* है। सापेक्षवाद के सिद्धान्त में होनेवाली गूढ़ता अधिकांशत: इसी कारण उत्पन्न हुई है कि मनुष्य ने काल के ज्ञान को, रंग के ज्ञान की तरह, अनुभूति के एक रूप में नहीं माना है। जिस तरह आँख के अभाव में रंग का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी तरह किसी घटना के अभाव में पल, घंटा या दिन का भी कोई अस्तित्व नहीं है, क्योंकि घटनाएँ ही काल का मानदण्ड हैं। और, जिस तरह दिक् भौतिक पदार्थों की केवल एक सम्भावित क्रमबद्धता है, उसी तरह काल भी घटनाओं की एक सम्भावित क्रमबद्धता है। काल के इस निजत्व को आइन्स्टीन ने इन शब्दों में बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है–"किसी व्यक्ति के अनुभव हमें घटनाओं के एक क्रम के रूप में व्यवस्थित दिखाई पड़ते हैं। इस क्रमबद्धता में हमें जो घटनाएँ स्मरण रहती हैं, वे 'पहले' और 'बाद' के मापदण्ड के अनुसार व्यवस्थित प्रतीत होती हैं। इसलिए व्यक्ति के लिए एक 'मेरा समय', या समय के निजत्व का अस्तित्व है। यह स्वयं अपने में मापे जाने-योग्य नहीं है। मैं इन घटनाओं के साथ संख्याओं को इस रूप में सम्बद्ध कर सकता हूँ कि परवर्ती घटना के लिए अधिक संख्या निर्धारित हो और पूर्ववर्ती घटना के लिए छोटी संख्या। इस सम्बन्ध की व्याख्या मैं एक घड़ी की सहायता से भी कर सकता हूँ– घड़ी-द्वारा प्रस्तुत घटनाओं के क्रम की, घटनाओं की क्रमबद्धता के साथ तुलना करके। एक घड़ी का अर्थ हम यही समझते हैं कि एक ऐसी वस्तु, जो गिनी जा सकनेवाली घटनाओं का एक क्रम उपस्थित करे।"

अपने अनुभवों का एक घड़ी (या कैलेण्डर) से सम्बन्ध जोड़ कर हम

समय को एक भौतिक भाव प्रदान कर देते हैं। फिर भी घड़ी या कैलेण्डर में व्यक्त समय का अन्तर एक ऐसा निश्चित परिमाण कदापि नहीं है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर किसी दैवी शक्ति-द्वारा आरोपित किया ग हो। सभी घड़ियाँ, जिनका उपयोग मनुष्य करते हैं, सौर-प्रणाली के अनुस बनायी जाती हैं। जिसे हम एक 'घंटा' कहते हैं, वह वस्तुतः दिक् का एक माप है— इस नैसर्गिक मंडल की प्रत्यक्ष दैनिक गति का १५ अंशों का वृत्तखण्ड है। और, जिसे हम एक 'वर्ष' कहते हैं, वह सूर्य के चारों ओर, अपनी धुरी पर पृथ्वी की प्रगति का एक माप-मात्र है। बुध ग्रह के निवासियों की समय-सम्बन्धी अपनी अलग धारणाएँ होंगी; क्योंकि बुध ग्रह हमारे यहाँ के ८८ दिनों में ही सूर्य क चक्कर लगा लेता है और इसी अवधि में अपनी धुरी पर भी एक सम्पूर्ण चक्कर काटता है। अतः बुध में एक दिन और एक वर्ष, दोनों बराबर हैं। लेकिन जब विज्ञान सूर्य के निकटवर्ती क्षेत्र से आगे का क्षेत्र लेता है, तब काल-सम्बन्धी हमारे सभी लौकिक विचार व्यर्थ साबित होते हैं। सापेक्षवाद हमें बतलाता है कि काल का कोई निश्चित अन्तर उस प्रणाली से स्वतंत्र नहीं है, जिसके लिए इसका उल्लेख किया जाता है। वास्तव में, संदर्भ-प्रणाली (System of Reference) से पृथक् न तो 'एक साथ' जैसी कोई वस्तु है और न 'अभी'-जैसी कोई चीज। उदाहरणस्वरूप, एक व्यक्ति न्यूयार्क से सन्ध्या के सात बजे लंदन-स्थित अपने एक मित्र को टेलीफोन करता है। उस समय लंदन में रात के १२ बज रहे होंगे। फिर भी, हम कह सकते हैं कि दोनों 'एक समय' ही बातचीत कर रहे हैं। लेकिन ऐसा इसलिए है कि दोनों एक ही ग्रह के निवासी हैं और उनकी घड़ियाँ समान नक्षत्रीय प्रणाली से निर्देशित हैं। यदि हम यह जानने का प्रयत्न करें कि 'आर्कटरस' नक्षत्र में अभी क्या हो रहा है, तो कहीं दुरूह समस्या पैदा हो जायेगी। आर्कटरस हमसे ३८ प्रकाश-वर्ष दूर है। एक प्रकाश-वर्ष का तात्पर्य उस दूरी से है, जो प्रकाश एक वर्ष में तय करता है, अर्थात् ६ महाशंख (६०,००,००,००,००,००,००,००,०००) मील। यदि हम रेडियो के द्वारा भी आर्कटरस नक्षत्र से सम्बन्ध स्थापित करना चाहें, तो हमारा संदेश वहाँ

पहुँचने में ३८ वर्ष लगेंगे और वहाँ से संदेश यहाँ पहुँचने में ३८ वर्ष।[१] और, तब यदि हम आर्कटरस नक्षत्र को देख कर कहें कि हम उसे 'अभी' देख रहे हैं, तो वस्तुतः हम एक राक्षस को ही देख रहे होंगे, जिसकी छाया हमारी स्नायुओं पर कभी सन् १९१८ में पड़ी होगी। आर्कटरस 'अभी' अस्तित्व में है या नहीं, यह जानने के लिए भी प्रकृति हमें सन् १९९४ तक रुकने को विवश कर देती है।

× × ×

इस परिस्थिति के बावजूद पृथ्वी के मनुष्य के लिए यह स्वीकार करना बहुत कठिन है कि 'इस क्षण' की बात, जिसे वह 'अभी' की संज्ञा देता है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर लागू नहीं होती। फिर भी आइन्स्टीन ने अपने विशिष्ट सापेक्षवाद-सिद्धान्त में एक लाजवाब उदाहरण और अनुमान प्रस्तुत करके यह सिद्ध किया है कि *असम्बद्ध प्रणालियों में घटनाएँ एक साथ घटती हैं, ऐसा सोचना व्यर्थ* है। उनका तर्क इस प्रकार है।

आरम्भ में ही, यह बात समझ लेनी चाहिये कि एक वैज्ञानिक, जिसका कार्य प्राकृतिक घटनाओं की भौतिक रूप में चर्चा करना है, 'यह', 'यहाँ' और 'अब' जैसे स्व-सम्बन्धी शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकता। उसके लिए दिक् और काल-सम्बन्धी धारणाएँ, जब घटनाओं और प्रणालियों के सम्बन्धों की व्याख्या हो जाती है, केवल भौतिक महत्व रखती हैं। और, उसके लिए यह आवश्यक है कि गति के दुरूह स्वरूपों [यथा, भौतिक यांत्रिकता (Celestial Mechanics) और चलवैद्युत् (Electrodynamics)] से सम्बन्धित पदार्थों के बारे में किसी निश्चय पर पहुँचने के लिए वह एक प्रणाली के परिमाणों के साथ दूसरी प्रणाली के परिमाणों का सम्बन्ध निश्चित करे। इन सम्बन्धों की व्याख्या करनेवाले गणित के नियमों को 'रूपान्तर के नियम' (Laws of

१. रेडियो-तरंगें प्रकाश-तरंगों की ही गति से चलती हैं।

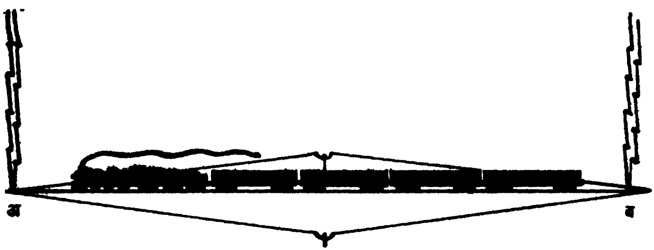
Transformation) कहा जाता है। सरलतम रूपान्तर का एक उदाहरण देखिये। *एक व्यक्ति जहाज के डेक पर टहल रहा है। यदि वह डेक पर तीन* मील प्रति घंटे की गति से आगे बढ़ता है और जहाज की गति १२ मील प्रति घंटा है, तो उस व्यक्ति की गति, सागर की तुलना में, १५ मील प्रति घंटा होगी और यदि वह उसी गति से पीछे की ओर चलता है, तो सागर की तुलना में, अवश्य ही, उसकी गति ९ मील प्रति घंटा होगी। अथवा, एक दूसरा उदाहरण देखिये। किसी रेलवे-क्रासिंग पर सावधानी-सूचक घंटी बज रही है, जिसकी ध्वनि की गति आसपास के वातावरण में ४०० गज प्रति सेकण्ड है। एक रेलगाड़ी उस क्रासिंग से २० गज प्रति सेकण्ड की गति से गुजरती है। अतः उस क्रासिंग तक पहुँचते समय ध्वनि की गति, उस गाड़ी के लिए प्रति सेकण्ड ४२० गज होगी और क्रासिंग से आगे बढ़ने पर ३८० गज प्रति सेकण्ड हो जायेगी। वेगों का यह साधारण योग साधारण अनुभव की बात है और गैलिलियो के समय से ही मिश्रित गति से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने में *इसका प्रयोग किया गया है। हाँ, प्रकाश-सम्बन्धी समस्याओं में इसके प्रयोग से बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं।*

सापेक्षवाद-सम्बन्धी अपने मूल व्याख्यापत्र में आइन्स्टीन ने एक अन्य रेलवे-विषयक घटना का उल्लेख कर इन कठिनाइयों पर प्रकाश डाला था। उन्होंने कहा था—एक रेलवे क्रासिंग है, जिस पर संकेत-सूचक प्रकाश की व्यवस्था है। इस प्रकाश की गति रेल-मार्ग पर प्रति सेकण्ड १,८६,२८४ मील है—प्रकाश के इस अनवरत वेग को भौतिक विज्ञान c के रूप में मानता है। एक गाड़ी संकेत-सूचक प्रकाश की ओर v वेग से चली आ रही है। अतएव दोनों वेगों को जोड़ कर कोई व्यक्ति इस निश्चय पर पहुँच सकता है कि गाड़ी की सापेक्षता में प्रकाश का वेग, जब गाड़ी उसकी ओर आती रहेगी, $c + v$ होगा और जब वह उसके पास से गुजर जायेगी, तब $c - v$ हो जायेगा। लेकिन यह परिणाम मिचेलसन और मोरले के परीक्षण के परिणामों के

विरुद्ध है। उस परीक्षण से यही प्रकट हुआ था कि प्रकाश के वेग पर न तो उसके *उद्गम की गति का असर पड़ता है और न उसके संग्राहक की गति का। यह* विस्मयात्मक तथ्य उन दुहरे सितारों के अध्ययन से भी पुष्ट हुआ है, जो एक गुरुत्वाकर्षण-केन्द्र का चक्कर लगाते हैं। इन गतिशील प्रणालियों के सावधानी-पूर्ण विश्लेषण से यह प्रकट हुआ है कि पृथ्वी के निकट आनेवाले और दूर जानेवाले प्रत्येक जोड़े सितारों की जो प्रकाश-किरणें पृथ्वी पर पहुँचती हैं, उनका वेग एक समान ही होता है। चूँकि प्रकाश का वेग सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्थिर है, आइन्स्टीन के रेलगाड़ीवाले उदाहरण में भी वह गाड़ी के वेग से प्रभावित नहीं हो सकता। यदि हम इसकी भी कल्पना कर लें कि गाड़ी संकेत-सूचक प्रकाश की ओर १०,००० मील की रफ्तार से बढ़ रही है, तब भी प्रकाश के वेग की स्थिरता का सिद्धान्त हमें यह बतलाता है कि उस गाड़ी पर सवार व्यक्ति भी प्रकाश-किरण की गति प्रति सेकण्ड १,८६,२८४ मील ही पायेगा—न अधिक, न कम।

इस स्थिति से उत्पन्न संकट, किसी दैनिकपत्र के रविवारीय संस्करण में प्रकाशित पहेली से भी कहीं अधिक गूढ़ है। इसका सम्बन्ध प्रकृति की एक अति गूढ़ पहेली से है। अतः आइन्स्टीन ने देखा कि यह समस्या दोनों मान्यताओं—(१) प्रकाश का वेग अप्रभावित रहता है और (२) वेगों का संयोग भी होता है— के असंगत विरोध का फल है। यद्यपि परवर्ती मान्यता गणित के सामान्य सिद्धान्त पर अधिक आधारित प्रतीत होती है (गणित में २ और २ के जोड़ का निश्चित परिणाम ४ निकलता है), तथापि आइन्स्टीन ने पूर्ववर्ती मान्यता में प्रकृति के एक मूलभूत नियम की झाँकी देखी। इसलिए, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक नया रूपान्तर-सम्बन्धी नियम निकाला जाना ही चाहिये, जिससे वैज्ञानिक, गतिमान-प्रणालियों के परस्पर-सम्बन्धों की इस तरह व्याख्या करने में समर्थ हो सकें कि वह प्रकाश-सम्बन्धी ज्ञात तथ्यों के अनुकूल साबित हो।

आइन्स्टीन जो चाहते थे, वह उन्हें एक महान डच भौतिक विज्ञानवेत्ता एच. ए. लारेंज-द्वारा, अपने एक विशिष्ट सिद्धान्त के सम्बन्ध में, तैयार किये गये कुछ समीकरणों में मिला। यद्यपि लारेंज के रूपान्तर-सिद्धान्त का मौलिक प्रयोग अब केवल वैज्ञानिक इतिहासकारों तक ही सीमित है, तथापि सापेक्षवाद



के गणित-विषयक ढाँचे के एक अंग के रूप में भी इसका अस्तित्व है। यह सिद्धान्त क्या बतलाता है, यह जानने के लिए पहले वेगों के प्राचीन यौगिक सिद्धान्त के दोषों पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है। इन दोषों को आइन्स्टीन ने रेलवे का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत करके प्रकट किया। इस बार उन्होंने एक लम्बे रेल-पथ की कल्पना की और पर्यवेक्षक को उसके किनारे के एक स्थान पर नियुक्त किया। एक जोर का तूफान आया और दो बिजलियाँ 'एक साथ' रेल-पथ के दो स्थलों 'अ' तथा 'ब' पर गिरीं। अब आइन्स्टीन का प्रश्न है कि 'एक साथ' से हमारा तात्पर्य क्या है ? इसे स्पष्ट करन के लिए वे यह कल्पना करते हैं कि 'अ' और 'ब' के बीचोबीच एक व्यक्ति बैठा है और उसके पास एक शीशा है, जिसकी सहायता से, बिना आँखें उठाये, वह 'अ' और 'ब', दोनों स्थलों पर नजर रख सकता है। तब यदि दोनों स्थानों की बिजली की चमक एक ही समय शीशे में उभरती है, तो इसे 'एक साथ' की संज्ञा दी जायेगी। अब उस

रेल-पथ पर एक गाड़ी आती है, और एक अन्य पर्यवेक्षक गाड़ी के ऊपर वैसा ही एक शीशा लिये बैठा है, जैसा किनारे के पर्यवेक्षक के पास है। संयोगवश वह जब किनारेवाले पर्यवेक्षक के सामने पहुँचता है, तभी 'अ' और 'ब' दोनों स्थलों पर बिजलियाँ गिरती हैं। अब प्रश्न है कि क्या उसे दोनों बिजलियाँ एक साथ गिरती दिखायी पड़ेंगी ? उत्तर है—नहीं; क्योंकि यदि गाड़ी 'ब' स्थल से 'अ' स्थल की ओर बढ़ रही होगी, तो 'ब' पर गिरनेवाली बिजली उसे 'अ' पर गिरनेवाली बिजली की अपेक्षा एक सेकण्ड बाद दिखाई पड़ेगी। यदि किसी को इस बारे में सन्देह हो, तो कुछ देर के लिए वह ऐसा मान ले कि गाड़ी प्रकाश की गति—१,८६,२८४ मील प्रति सेकण्ड— से ही दौड़ रही है। ऐसी अवस्था में 'ब' चमक, यद्यपि वह 'अ' चमक के वेग की ही होगी, शीशे में कभी नहीं उभरेगी, क्योंकि वह गाड़ी को पकड़ नहीं सकेगी। अतः गाड़ी पर का पर्यवेक्षक केवल एक ही बिजली के गिरने का आभास पा सकेगा। गाड़ी की गति चाहे जो हो, गतिशील पर्यवेक्षक सर्वदा इसी बात पर जोर देगा कि उसके सामनेवाली बिजली रेल-पथ पर पहले गिरी। इस प्रकार, बिजली की चमकें स्थिर पर्यवेक्षक को भले ही 'एक साथ' दिखाई पड़ें, पर गतिशील पर्यवेक्षक को 'एक साथ' नहीं दिखाई पड़ेंगी।

इस प्रकार बिजली की चमकों का विरोध, आइन्स्टीन के दर्शन के अत्यधिक विलक्षण और कठिन सिद्धान्तों में से एक को नाटकीय स्वरूप में उपस्थित करता है। यह सिद्धान्त है— समकालीनता की सापेक्षता। इससे व्यक्त होता है कि मनुष्य इस बात की आशा नहीं कर सकता कि 'अभी' की उसकी आत्मगत भावना ब्रह्माण्ड के सभी क्षेत्रों में लागू होती है। आइन्स्टीन बतलाते हैं कि "प्रत्येक संदर्भ-वस्तु (Reference Body) या सहनिर्देशक प्रणाली (Co-ordinate System) का अपना विशेष काल होता है; अतः जब तक हमें यह मालूम नहीं होता कि किस काल का किस संदर्भ-वस्तु से सम्बन्ध है, किसी घटना के काल के बारे में कुछ बोलना व्यर्थ है।" इसलिए, वेगों के योग-

सम्बन्धी प्राचीन सिद्धान्त का दोष उसकी इस अव्यक्त धारणा में है कि किसी घटना की अवधि उसकी संदर्भ-प्रणाली की गति की अवधि से स्वतंत्र होती है। जहाज के डेक पर टहल रहे व्यक्ति के उदाहरण में यह धारणा बनायी गयी थी कि उस गतिशील जहाज की घड़ी के अनुसार यदि वह तीन मील प्रति घंटा की चाल से चल रहा हो, तो उसकी गति किसी तरह समुद्र में स्थापित स्थिर घड़ी के अनुसार भी वही होगी। उस दृष्टान्त में यह भी धारणा बनायी गयी थी कि एक घंटे में वह जो दूरी तय करेगा, उसको चाहे जहाज के डेक (गतिशील प्रणाली) से सम्बद्ध रूप में मापा जाये या सागर (स्थिर प्रणाली) से सम्बद्ध रूप में, उसका मूल्य समान होगा। यह वेगों के योग के क्षेत्र में दूसरा दोष है; क्योंकि काल की तरह ही दूरी भी एक सापेक्ष कल्पना है और संदर्भ-प्रणाली की गति से मुक्त दिक् के अन्तर-जैसी किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है।

अतएव आइन्स्टीन ने यह विचार व्यक्त किया कि जो वैज्ञानिक प्रकृति के तत्त्वों की, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सभी प्रणालियों के लिए अनुकूल रूप में, व्याख्या करना चाहते हैं, उन्हें काल और दूरी के मापों को परिवर्तनीय रूप में मानना चाहिए। लारेंज के रूपान्तर-सम्बन्धी समीकरण इसी बात की पुष्टि करते हैं। वे प्रकाश के वेग को एक ब्रह्माण्डीय स्थिरांक के रूप में मानते हैं, लेकिन काल और दूरी के सभी मापों को प्रत्येक संदर्भ-प्रणाली के वेग के अनुसार संशोधित करते हैं।[१]

१. लारेंज का रूपांतर-सिद्धांत गतिशील प्रणालियों की दूरियों और कालों की तुलना, अपेक्षाकृत स्थिर प्रणालियों में अवलोकित दूरियों और कालों से करता है। उदाहरण के लिए मान लीजिये कि एक संदर्भ-वस्तु या प्रणाली एक निश्चित दिशा में चल रही है। तब, वेग के प्राचीन सिद्धांत के अनुसार, एक दूरी या लम्बाई x', जो गति की दिशा में गतिशील प्रणाली के संदर्भ में मापी गयी है, अपेक्षाकृत स्थिर प्रणाली के संदर्भ में $x' = x' \pm vt$ समीकरण के द्वारा, जहां v गतिशील प्रणाली का वेग है और t काल है, मापी गयी लम्बाई x से सम्बन्धित है। विस्तार y' और z' भी, जो गतिशील प्रणाली के संदर्भ में

अतएव, यद्यपि लारेंज ने मूलतः अपने समीकरणों को एक विशिष्ट समस्या को हल करने के लिए तैयार किया था, आइन्स्टीन ने उन्हें एक अत्यधिक साधारणीकरण का आधार बना लिया और सापेक्षता के सिद्धान्त ने एक अन्य धारणा को जन्म दिया– लारेंज के रूपान्तर-सिद्धान्त के संदर्भ में, प्रकृति के

x′ के और परस्पर (ऊँचाई और चौड़ाई) के समकोणों पर मापे गये हैं, अपेक्षाकृत स्थिर प्रणाली के संदर्भ में $y' = y$ और $z' = z$ समीकरण के द्वारा मापे गए विस्तार y और z से सम्बद्ध हैं। और अंत में, गतिशील प्रणाली के संदर्भ में निश्चित किया गया कालान्तर t′ समीकरण $t' = t$ के द्वारा स्थिर प्रणाली के संदर्भ में निश्चित कालान्तर t से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में, दूरियाँ और काल विशिष्ट भौतिक विज्ञान में सम्बन्धित प्रणाली के वेग से अप्रभावित रहते हैं। लेकिन इसी पूर्वधारणा के कारण बिजली की चमकों में आत्मविरोध उत्पन्न होता है। लारेंज का रूपांतर-सिद्धान्त प्रकाश के वेग c को सभी पर्यवेक्षकों के लिए स्थिर रख कर, गतिशील प्रणालियों से देखी गयी दूरियों और कालों को स्थिर पर्यवेक्षक-द्वारा देखी गयी दूरियों और कालों तक ला देता है। लारेंज के रूपांतर-सम्बन्धी ये वे समीकरण हैं, जिन्होंने ऊपर दिखाये गये पुराने और स्पष्टतः अपर्याप्त सम्बन्धों में सुधार किया है :—

$$x' = \sqrt{\frac{x - vt}{1 - (v^2/c^2)}}$$

$$y' = y$$

$$z' = z$$

$$t' = \sqrt{\frac{t - (v/c^2)x}{1 - (v^2/c^2)}}$$

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि, पुरातन रूपान्तर-सम्बन्धी नियम के अनुसार ही, विस्तार y′ और z′ गति से अप्रभावित हैं। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि यदि गतिशील प्रणाली v का वेग प्रकाश के वेग c के संदर्भ में कम है, तो लारेंज के रूपान्तर-सम्बन्धी समीकरण अपने को घटा कर वेगों के योग-सम्बन्धी पुरातन सिद्धान्त के बराबर कर देते हैं। लेकिन v का परिमाण ज्यों ही c के परिमाण के निकट पहुँचता है, x′ और t′ के मूल्य मूल रूप से बदल जाते हैं।

नियम सभी प्रणालियों में अपनी एकरूपता को स्थापित रखते हैं। इस तरह विशुद्ध गणित की भाषा में व्यक्त किये जाने पर इस धारणा का महत्व एक अनजान व्यक्ति के लिए तो शायद ही स्पष्ट होगा; परन्तु भौतिक विज्ञान में एक समीकरण कभी विशुद्ध भावात्मक नहीं होता। यह केवल एक संक्षिप्त अभिव्यक्ति का साधन होता है, जिसकी सहायता से वैज्ञानिक प्रकृति के तत्त्वों की व्याख्या करने में सुविधा का अनुभव करता है। कभी-कभी यह 'रोजेटा स्टोन' का भी रूप धारण कर लेता है, जिसमें विचारक भौतिक विज्ञानवेत्ता अपनी जानकारी के गुप्त तत्त्वों को खोलता है। तभी तो लारेंज के रूपान्तर-सम्बन्धी समीकरणों में निहित संदेश को समझने के बाद, आइन्स्टीन ने भौतिक ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में कई नयी और असाधारण सच्चाइयों का रहस्योद्घाटन किया।

— सात —

सापेक्षता के दार्शनिक और गणित-विषयक आधारों का निश्चय कर लेने के बाद, आइन्स्टीन को उन्हें प्रयोगशाला में ले जाना पड़ा, जहाँ काल और दिक्-जैसी भाववाचक वस्तुओं से घड़ियों और मापदंडों के सहारे निबटना पड़ता है। अतएव, काल और दिक्-सम्बन्धी अपने मूल विचारों को प्रयोगशाला की भाषा का रूप देते हुए उन्होंने घड़ियों और मापदंडों के कुछ अनजाने तत्त्वों को व्यक्त किया। उदाहरण के लिए, किसी गतिशील प्रणाली से सम्बन्धित घड़ी की तालबद्धता किसी स्थिर घड़ी से पृथक् ढंग की होती है और किसी गतिशील प्रणाली से सम्बन्धित मापदंड उस प्रणाली के वेग के अनुसार अपनी लम्बाई में परिवर्तन लाता है। विशेष तौर पर, घड़ी अपनी गतिशील प्रणाली की गति बढ़ने से सुस्त हो जाती है और मापदंड अपनी गति की दिशा में सिकुड़ता जाता है। इन विचित्र परिवर्तनों का घड़ी या मापदंड के निर्माण से कोई सम्बन्ध नहीं होता। घड़ी पेंडुलमवाली भी हो सकती है, स्प्रिंगवाली भी और घंटा-

बोधक शीशे के रूप में भी। मापदंड भी, इसी प्रकार लकड़ी के रूल, धातु के गज या दस मील लम्बे तार के रूप में हो सकता है। घड़ी का सुस्त होना और मापदंड का सिकुड़ना यांत्रिक गुण नहीं हैं; घड़ी और मापदंड के साथ घोड़े पर चलनेवाला व्यक्ति इन परिवर्तनों को नहीं देख पायेगा। लेकिन एक स्थिर पर्यवेक्षक— अर्थात् गतिशील प्रणाली के संदर्भ में स्थिर व्यक्ति— पायेगा कि गतिशील व्यक्ति के पास की घड़ी उसकी घड़ी के मुकाबले में सुस्त हो गयी है और घुड़सवार का मापदंड उसके मापदंड की तुलना में सिकुड़ गया है।

गतिशील घड़ियों और मापदंडों का यह ऐकिक आचरण प्रकाश के स्थिर वेग को व्यक्त करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि क्यों सभी स्थानों के और सभी प्रणालियों के पर्यवेक्षक – अपनी गति से प्रभावित हुए बिना – सदा ऐसा पायेंगे कि प्रकाश एक ही वेग से उनके यंत्रों तक पहुँचता और अलग होता है। ऐसा इसलिए होता है कि ज्यों ही उनका अपना वेग प्रकाश के वेग के निकट पहुँचता है, एक अपेक्षाकृत स्थिर पर्यवेक्षक की तुलना में, उनकी घड़ियाँ धीमी पड़ जाती हैं, मापदंड सिकुड़ जाते हैं और सारे माप कम पड़ जाते हैं। इन संकोचन-सम्बन्धी नियमों की लारेंज के रूपान्तर-सिद्धान्त में व्याख्या की गयी है और ये बहुत साधारण हैं : जितनी अधिक गति, उतना अधिक संकोचन। प्रकाश के ९० प्रतिशत वेग के साथ गतिशील कोई मापदंड अपनी लम्बाई के ५० प्रतिशत भाग में सिकुड़ जायेगा। उसके बाद संकोचन की क्रिया और भी तीव्र हो जाती है और यदि उसे प्रकाश का सम्पूर्ण वेग मिल जाये, तब तो वह सिकुड़ कर शून्य के बराबर हो जायेगा। इसी तरह प्रकाश के सम्पूर्ण वेग के साथ संयुक्त घड़ी पूर्णतः रुक जायेगी। इससे यह प्रकट होता है कि चाहे जिन शक्तियों का प्रयोग किया जाये, प्रकाश से अधिक तीव्रगामी कुछ भी नहीं हो सकता। इस प्रकार सापेक्षता प्रकृति का एक अन्य मौलिक नियम प्रकट करती है–"प्रकाश का वेग ब्रह्माण्ड का सर्वाधिक तीव्र वेग है।"

पहले-पहल इन तथ्यों को समझ लेना कठिन है, लेकिन ऐसा केवल इसलिए

है कि विशिष्ट भौतिक विज्ञान ने अनुचित रूप से यह धारणा स्थिर कर ली है, कि कोई पदार्थ— चाहे वह गतिशील हो या स्थिर— समान विस्तार को कायम रखता है और एक घड़ी, चाहे वह गतिशील अवस्था में हो या स्थिर अवस्था में, अपनी तालबद्धता एक समान रखती है। सामान्य बुद्धि कहती है कि अवश्य ही ऐसा होता होगा; लेकिन जैसा कि आइन्स्टीन ने कहा है, सामान्य बुद्धि वास्तव में उन धारणाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जिन्हें एक व्यक्ति १८ वर्ष की उम्र तक अपने मानस में स्थान दे देता है। इस उम्र के बाद किसी भी नये विचार को, किसी व्यक्ति के मानस में स्थान पाने से पूर्व, उन 'स्वयंसिद्ध' धारणाओं से निबटना पड़ता है। चूँकि आइन्स्टीन किसी भी असिद्ध सिद्धान्त को 'स्वयंसिद्ध' मानने को तैयार नहीं थे; अतः वे अन्य वैज्ञानिकों की अपेक्षा प्रकृति की यथार्थताओं को अधिक सूक्ष्मता से देख पाते थे। गतिशील घड़ियाँ सुस्त पड़ जाती हैं और गतिशील मापदंड सिकुड़ जाते हैं, ऐसा मानना क्यों विस्मयात्मक है ? —यही उनका प्रश्न था। इसका कारण यह है कि विशिष्ट भौतिक विज्ञान ने 'ऐसा नहीं होता' इसी विचार को स्वीकृत मान लिया; क्योंकि मनुष्य अपने दैनिक अनुभवों में उतने अधिक वेगों के सम्पर्क में नहीं आता, जिनके कारण ये परिवर्तन होते हैं। एक मोटर-गाड़ी, एक विमान, या एक V-2 राकेट में भी किसी घड़ी के सुस्त होने को मापा नहीं जा सकता। ऐसा तभी सम्भव है, जब प्रकाश के समान वेग उपस्थित हो— ऐसी स्थिति में ही सापेक्षिक प्रभावों का अनुभव किया जा सकता है। लारेंज के रूपान्तर-सम्बन्धी समीकरण इस बात को बड़े सरल ढंग से स्पष्ट कर देते हैं कि सामान्य गतियों की दशा में काल और दिक् के अन्तर प्रायः शून्य के बराबर होते है। इस प्रकार, सापेक्षता विशिष्ट भौतिक विज्ञान का खण्डन नहीं करती। यह पुराने सिद्धान्तों को केवल एक सीमित क्षेत्र में मानती है— अर्थात् उनका सम्बन्ध केवल मनुष्य के सामान्य अनुभवों से होता है।

× × ×

इस प्रकार आइन्स्टीन ने उस बाधा को पार कर लिया, जिसका आधार मनुष्य की यह धारणा थी कि वह अपनी इन्द्रियों से जिस रूप में प्रकृति के तत्त्वों को देखता ह, उसी रूप में प्राकृतिक यथार्थता की भी व्याख्या कर सकेगा। जिस तरह प्रमात्रा-सिद्धान्त ने यह प्रकट किया कि किसी पदार्थ के सूक्ष्म कण उन बड़े कणों की तरह, जिन्हें हम संसार में देखते हैं, आचरण नहीं करते; उसी तरह सापेक्षता यह व्यक्त करती है कि मनुष्य की आँखों को दिखाई देनेवाले पदार्थों के आचरण से हम तीव्र वेगवाली वस्तुओं के बारे में पूर्व-अनुमान नहीं लगा सकते तथा न ही यह राय कायम कर सकते हैं कि सापेक्षता के नियम केवल असाधारण घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं; बल्कि इसके विपरीत वे एक अत्यंत दुरूह ब्रह्माण्ड का, जिसमें हमारे पार्थिव अनुभव की साधारण यांत्रिक घटनाएँ अपवाद-स्वरूप हैं, एक विस्तृत चित्र प्रस्तुत करते हैं। आज का वैज्ञानिक, जो परमाणु के तीव्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त भीषण वेगों अथवा दिक् और काल की अनन्तता का पता लगाने में व्यस्त है, न्यूटन के पुराने नियमों को अपर्याप्त पाता है। लेकिन सापेक्षता से उसे हर मामले में प्रकृति का सम्पूर्ण और सही विवरण प्राप्त होता है।

जब कभी आइन्स्टीन के सिद्धान्तों की परीक्षा की गयी है, उनका औचित्य पूर्णतः सिद्ध हुआ है। सन् १९३६ में बेल टेलीफोन लेबोरेटरीज के एच. ई. आइव्स ने एक परीक्षण किया, जिससे कालान्तर के सापेक्षित ह्रास का उल्लेख-योग्य प्रमाण मिला। एक विकीर्णात्मक परमाणु को एक प्रकार की घड़ी माना जा सकता है, क्योंकि यह एक निश्चित आवृत्ति और तरंगदैर्घ्यवाला प्रकाश फेंकता है, जो कि एक वर्णपटदर्शक (Spectroscope) की सहायता से बड़ी सूक्ष्मता से मापा जा सकता है। आइव्स ने उच्च वेग-सहित गतिशील उद्जन-परमाणुओं-द्वारा छोड़े गये प्रकाश की, स्थिर उद्जन-परमाणुओं द्वारा छोड़े गये प्रकाश के साथ, तुलना की और पाया कि, आइन्स्टीन के समीकरणों-द्वारा व्यक्त पूर्वानुमान के अनुसार ही, गतिशील अणुओं के प्रकम्पन की आवृत्ति

कम हो गयी। किसी दिन, सम्भव है, विज्ञान इसी सिद्धान्त का कहीं अधिक रोचक परीक्षण करे। चूँकि कोई भी आवर्त्त-गति (Periodic Motion) काल को मापने का काम देती है; अतः आइन्स्टीन का कहना है कि, मानव-हृदय भी एक तरह की घड़ी है। सापेक्षता के अनुसार, एक व्यक्ति के हृदय की धड़कन, प्रायः प्रकाश के समान वेग के साथ चलते समय, उसके श्वासोच्छ्वास एवं अन्य शारीरिक क्रियाओं के साथ ही धीमी पड़ जायेगी। परन्तु वह इस धीमेपन को अनुभव नहीं कर सकेगा; क्योंकि उसकी घड़ी भी उसी अनुपात में धीमी पड़ जायेगी। लेकिन एक स्थिर पर्यवेक्षक की दृष्टि में उसकी उम्र धीमी गति से बढ़ती प्रतीत होगी। बक रोजर की एक काल्पनिक कहानी के अनुसार ऐसी कल्पना की जा सकती है कि भविष्य में ब्रह्माण्ड का अन्वेषण करनेवाला कोई व्यक्ति परमाणु-चालित विमान पर, जिसकी गति प्रति सेकण्ड १,६७,००० मील हो, चढ़ कर यात्रा करने के उपरान्त, दस वर्ष बाद, पृथ्वी पर जब लौटेगा, तो अपनी उम्र में केवल पाँच वर्ष की वृद्धि का अनुभव करेगा।

— आठ —

भौतिक ब्रह्माण्ड की यांत्रिकता को व्यक्त करने के लिए तीन परिमाणों की आवश्यकता पड़ती है— काल, दूरी और राशि। चूँकि काल और दूरी सापेक्षिक परिमाण हैं; अतः ऐसा सोचा जा सकता है कि किसी वस्तु की राशि भी अपनी गति के अनुसार विभिन्न होती है। और, वास्तव में, सापेक्षता के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यावहारिक परिणाम इसी सिद्धान्त— राशि की सापेक्षता— से प्रकट हुए हैं।

अपने प्रचलित अर्थ में 'राशि' शब्द 'वजन' का पर्याय है। परन्तु भौतिक विज्ञानवेत्ता के लिए, यह एक अन्य और पदार्थ के अपेक्षाकृत अधिक मूल तत्त्व —गति-परिवर्तन का प्रतिरोध— के अर्थ में व्यक्त होता है। एक माल ढोनेवाली मोटर को गतिमान करने के लिए, एक बाइसिकिल की अपेक्षा अधिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। माल ढोनेवाली मोटर बाइसिकिल की तुलना में

गति का अधिक दृढ़ता से प्रतिरोध करती है; क्योंकि उसमें राशि की अधिकता होती है। विशिष्ट भौतिक विज्ञान में किसी वस्तु की राशि को स्थिर और अपरिवर्तित माना गया था। इसके अनुसार, एक माल ढोनेवाली मोटर की राशि एक ही रहनी चाहिए, चाहे वह चल रही हो या रुकी हो– किसी सड़क पर ६० मील की गति से चल रही हो, या बाह्य दिक् में प्रति सेकण्ड ६०,००० मील की रफ्तार से गतिशील हो। लेकिन सापेक्षता यह कहती है कि एक गतिशील वस्तु की राशि कदापि स्थिर नहीं होती, बल्कि वेग अथवा गति के साथ ही बढ़ती है। प्राचीन भौतिक विज्ञान इस तथ्य का केवल इसलिए पता नहीं लगा सका कि मानव की इन्द्रियाँ और यंत्र, सामान्य अनुभव-योग्य क्षीण वेगों-द्वारा उत्पादित राशि की अतिसूक्ष्म वृद्धियों को ग्रहण कर सकने में सर्वथा असमर्थ हैं। वे तभी ग्राह्य होती हैं, जब वस्तुएँ प्रकाश के समान वेग प्राप्त कर लेती हैं। (यह बात संयोगवश लम्बाई के संकोचन-सम्बन्धी सापेक्षिक सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं ठहरती। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि कोई वस्तु छोटी होने के साथ-साथ अधिक भारी कैसे हो जायेगी ? परन्तु यह उल्लेखनीय है कि संकोचन-क्रिया केवल गति की दिशा में घटती है : चौड़ाई और फैलाव उससे अप्रभावित रहता है। साथ ही राशि 'वजन' की नहीं, बल्कि गति के प्रतिरोध की द्योतक है।)

वेग के साथ राशि की वृद्धि-सम्बन्धी आइन्स्टीन के समीकरण, स्वरूप में सापेक्षता के अन्य समीकरणों की ही भाँति हैं, किन्तु परिणाम की दृष्टि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं।

$$m = \frac{mo}{\sqrt{1 - v^2/c^2}}$$

यहाँ m किसी वस्तु की, जो वेग v के साथ गतिशील है, राशि को व्यक्त करता है; mo स्थिर राशि का द्योतक है और c प्रकाश के वेग का प्रति-

निधित्व करता है। कोई भी व्यक्ति, जिसने प्रारम्भिक बीजगणित (Elementary Algebra) का अध्ययन किया हो, आसानी से यह समझ सकता है कि यदि v छोटा है, जैसा कि सभी सामान्य अनुभववाले वेग होते हैं, तो mo और m का अन्तर प्राय: शून्य है। लेकिन जब v को c का मूल्य प्राप्त हो जाता है, तब राशि की वृद्धि काफी अधिक हो जाती है और अनंतता के निकट (जब कि गतिशील वस्तु का वेग प्रकाश के वेग के बराबर हो जाता है) पहुँच जाती है। चूँकि एक अनंत राशि-सम्पन्न वस्तु, गति का अनन्त रूप से प्रतिरोध करेगी; अत: इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि कोई भी भौतिक वस्तु प्रकाश की गति से नहीं चल सकती।[1]

सापेक्षता के सभी पहलुओं में से एक— राशि की वृद्धि का सिद्धान्त— की ही जाँच की गयी है और परीक्षण करनेवाले भौतिक विज्ञानवेत्ताओं ने बड़ी सफलतापूर्वक उसका प्रयोग किया है। शक्तिशाली विद्युत्-क्षेत्रों में विचरते विद्युत्-अणुओं और रेडियो-सक्रिय तत्त्वों के केन्द्र से विकीर्ण होनेवाले ऋण-तत्त्वों (Beta Substances) को प्रकाश का ९९ प्रतिशत तक वेग प्राप्त हो जाता है। इन बड़ी गतियों से सम्बन्धित परमाणु-सम्बन्धी भौतिक विज्ञानवेत्ताओं के लिए, राशि की वृद्धि-सम्बन्धी सापेक्षता की पूर्वघोषणा तर्कसंगत तो साबित नहीं होती, परन्तु उनका गणित एक प्रयोगसिद्ध तथ्य को छोड़ भी नहीं सकता। वास्तव में, प्रोटोन-साइक्रोटोन और महाशक्ति (Super-energy) सम्बन्धी अन्य यंत्रों की यांत्रिकता इस तरह की होती है, जिसमें प्रकाश के वेग के निकट गति के पहुँचने पर कणों की राशि की वृद्धि को स्वीकार किया जाता है।

'राशि की सापेक्षता'-सम्बन्धी अपने सिद्धान्त से आगे बढ़ने पर आइन्स्टीन एक अन्य निष्कर्ष पर पहुँचे, जिसका संसार के लिए बहुत अधिक महत्व है।

---

१. परिशिष्ट देखिये

उनके तर्क की गाड़ी बहुत-कुछ इस रूप में आगे बढ़ी—चूँकि एक गतिशील वस्तु की राशि उसकी गति की वृद्धि के साथ-ही-साथ बढ़ती है और चूँकि गति शक्ति (गत्यात्मक शक्ति Kinetic Energy) का एक रूप है; एक गतिशील वस्तु की वर्द्धित राशि उसकी वर्द्धित शक्ति से उत्पन्न होती है। संक्षेप में, शक्ति में राशि होती है। अपेक्षाकृत कुछ साधारण गणित-सम्बन्धी कदम उठाने के बाद आइन्स्टीन ने समान राशि m का मूल्यांकन शक्ति E की किसी इकाई में किया और उसे $m=E/c^2$ समीकरण के रूप में व्यक्त किया। इस सम्बन्ध को प्राप्त कर लेने के बाद एक हाई स्कूल का विद्यार्थी भी बाकी बीजगणित-सम्बन्धी कार्य पूरे करके सर्वाधिक महत्वपूर्ण, और निश्चय ही सर्वाधिक प्रसिद्ध, समीकरण $E=mc^2$ को प्राप्त कर सकता है।

परमाणु-बम के निर्माण में इस समीकरण ने कितना महत्वपूर्ण भाग लिया, इससे सभी समाचारपत्र पढ़नेवाले परचित हैं। भौतिक विज्ञान की संकेत-लिपि में यह समीकरण व्यक्त करता है कि किसी पदार्थ के एक कण की शक्ति, उस वस्तु की मात्रा (ग्रामों में) और प्रकाश के वेग (प्रति सेकंड सेंटीमीटर) के वर्ग के गुणनफल के बराबर होगी। यह असाधारण सम्बन्ध उस समय अधिक स्पष्ट हो जाता है, जब उसे ठोस मूल्यों के रूप में प्रकट किया जाता है, जैसे यदि एक किलोग्राम (लगभग दो पौण्ड) कोयले को शक्ति में परिणत किया जाये, तो २५० अरब किलोवाट घंटा बिजली पैदा होगी। यह राशि इतनी है, जितनी अमेरिका के सभी विद्युत्-कारखाने मिल कर दो महीने में पैदा करते हैं।

$E=mc^2$ भौतिक विज्ञान के अनेक अति प्राचीन रहस्यों का समाधान करता है। यह बतलाता है कि कैसे रेडियम और यूरेनियम-जैसे रेडियो-सक्रिय तत्त्व भारी वेग से कणों को विकीर्ण करते हैं और लाखों वर्षों तक वैसा करने की क्षमता रखते हैं। यह बतलाता है कि कैसे सूरज और सभी सितारे अरबों वर्षों तक प्रकाश और ताप विकीर्ण करते रह सकते हैं। यदि साधारण दाह-क्रियाओं

के द्वारा सूरज की शक्ति व्यय होती, तो यह पृथ्वी युगों पूर्व ही घोर अन्धकार में पड़ कर मृत्यु को प्राप्त हो गयी होती। यह परमाणु के केन्द्र में अवस्थित शक्ति के परिमाण को प्रकट करता है और बतलाता है कि एक नगर को विनष्ट करने के लिए एक बम में कितने 'ग्राम' यूरेनियम रखा जाना चाहिये। साथ ही, यह प्राकृतिक यथार्थता के सम्बन्ध में कुछ मूलभूत सच्चाइयों को भी प्रकट करता है। सापेक्षवाद से पहले, वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड को दो स्पष्ट तत्त्वों— पदार्थ और शक्ति— से सम्पन्न जहाज के रूप में माना था। इनमें से पदार्थ को निष्क्रिय अवलोकन-योग्य और राशि-नामक तत्त्व से व्याख्या के योग्य माना गया था, जबकि शक्ति को सक्रिय, अदृश्य और राशि-विहीन स्वीकार किया गया था। लेकिन आइन्स्टीन ने बतलाया कि राशि और शक्ति, दोनों बराबर हैं— राशि संगठित शक्ति ही है। दूसरे शब्दों में, पदार्थ शक्ति है और शक्ति पदार्थ है— इन दोनों का अन्तर केवल अस्थायी ढंग का है।

इस उदार सिद्धान्त के प्रकाश में प्रकृति की अनेक पहेलियाँ सुलझी हैं। पदार्थ और विकिरण की रहस्यमयी परस्पर-क्रीड़ा, जो कभी तो कणों का समूह प्रतीत होती है और कभी तरंगों का संगम, अधिक समझने-योग्य बन जाती है। पदार्थ की इकाई और विद्युत् की इकाई के रूप में विद्युत्-अणु की दोहरी भूमिका, तरंगीय विद्युत्-अणु, फोटोन, पदार्थीय तरंगें, सम्भावना की तरंगें, तरंगों का ब्रह्माण्ड— ये सब कम आत्मविरोधी प्रतीत होते हैं। ये सारी धारणाएँ प्राकृतिक यथार्थता के केवल विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या करती हैं और यह प्रश्न करने का अवसर नहीं देतीं कि उनमें से कोई वस्तुतः क्या है। पदार्थ और शक्ति परस्पर-परिवर्तनीय हैं। यदि पदार्थ अपनी राशि को त्याग कर प्रकाश की गति के साथ विचरण करता है, तो हम इसे विकिरण या 'शक्ति' कहते हैं। ठीक इसी तरह, यदि शक्ति अपने को जमा कर जड़ बन जाती है और हम उसकी राशि का निश्चय कर लेते हैं, तो उसे 'पदार्थ' के नाम से पुकारते हैं। तब तक विज्ञान केवल उनके क्षणिक तत्त्वों और पार्थिव

मनुष्य के अवलोकन से उनके स्पर्श का ही पता लगा सकता था। परन्तु १६ जुलाई, १९४५ से मनुष्य दोनों को एक-दूसरे में परिवर्तित करने में समर्थ हो गया है। उसी रात न्यू मेक्सिको के अलमोगोर्डो-नामक स्थान में एक व्यक्ति ने पहली बार पदार्थ के एक ठोस परिमाण को प्रकाश, ताप, ध्वनि और गति के रूप में – जिन्हें हम 'शक्ति' की संज्ञा देते हैं – परिवर्तित किया।

फिर भी मौलिक रहस्य बच जाता है। धारणाओं के एकीकरण– सभी पदार्थों का तत्त्वों के रूप में और फिर कणों के रूप में संक्षिप्तीकरण, शक्तियों का शक्ति की ऐकिक धारणा में परिवर्तन और पदार्थ तथा शक्ति का एक मौलिक परिमाण में अल्पीकरण–– की दिशा में विज्ञान की सम्पूर्ण प्रगति किस लक्ष्य की ओर हो रही है, यह अब भी अज्ञात ही है। कई प्रश्नों ने मिल कर एक रूप ग्रहण कर लिया है, जिसका सम्भव है, कभी कोई उत्तर न दिया जा सके। वह प्रश्न है––इस राशि-शक्ति-तत्त्व का सार क्या है ? प्राकृतिक यथार्थता के किस स्तर का उद्घाटन विज्ञान करना चाहता है ?

इस तरह प्रमात्रा-सिद्धान्त की तरह ही, सापेक्षवाद भी मनुष्य की बुद्धि को न्यूटन के ब्रह्माण्ड से बहुत दूर ले जाता है। न्यूटन का ब्रह्माण्ड, दिक् और काल में अच्छी तरह जड़ जमाये हुए है और किसी बड़े, सही और व्यवस्था-योग्य यंत्र की तरह कार्य कर रहा है। आइन्स्टीन के गति-सम्बन्धी नियम; दूरी, काल और राशि की सापेक्षता-सम्बन्धी उनके मौलिक सिद्धान्त: और इन सिद्धान्तों के आधार पर निकाले गये उनके निष्कर्ष– ये ही 'सापेक्षता का विशिष्ट सिद्धान्त' के रूप में माने जाते हैं। इस मौलिक अनुसन्धान के प्रकाशन के बाद की दशाब्दी में उन्होंने अपनी वैज्ञानिक और दार्शनिक प्रणाली को विस्तृत कर 'सापेक्षता का साधारण सिद्धान्त' का रूप दिया। इसके द्वारा उन्होंने उस रहस्यपूर्ण शक्ति की परीक्षा की, जो सितारों, पुच्छलतारों, उल्काओं और ज्योतिर्मालाओं के चक्करों और लोहा, पत्थर, भाप, लपटों और

अन्वेषण के अयोग्य शून्य की गति-प्रणालियों को निर्देशित करती है। न्यूटन ने इस शक्ति को 'ब्रह्माण्डीय गुरुत्वाकर्षण' का नाम दिया। गुरुत्वाकर्षण-सम्बन्धी अपने निजी सिद्धान्त से ही आइन्स्टीन ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की विस्तृत रचना के दर्शन किये।

— नौ —

अल्बर्ट आइन्स्टीन कहते हैं– "अगणितज्ञ जब चतुर्विस्तारात्मक (Four-dimensional) वस्तुओं के बारे में सुनता है, तो एक रहस्यपूर्ण भय से जकड़ जाता है। यह भावना उसी तरह की होती है, जैसी प्रेत अथवा निगूढ़ के चिन्तन से उत्पन्न होती है। फिर भी, इससे अधिक और कोई 'सामान्य' वक्तव्य नहीं हो सकता कि जिस संसार में हम निवास करते हैं, वह चतुर्विस्तारात्मक दिक्-काल की 'अखण्डता' (Continuum) है।"

इस सम्बन्ध में आइन्स्टीन-द्वारा प्रयुक्त शब्द 'सामान्य' पर कोई भी अगणितज्ञ आपत्ति कर सकता है। फिर भी, विचारों की अपेक्षा शब्दावली में ही अधिक कठिनाई निहित है। एक बार इस 'अखण्डता' का सही-सही अर्थ ग्रहण कर लिये जाने पर आइन्स्टीन की चतुर्विस्तारात्मक दिक्-काल की अखण्डता के रूप में ब्रह्माण्ड की कल्पना– और यही वह विचार है, जो ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी सभी आधुनिक धारणाओं का आधार बना हुआ है– पूर्णतः

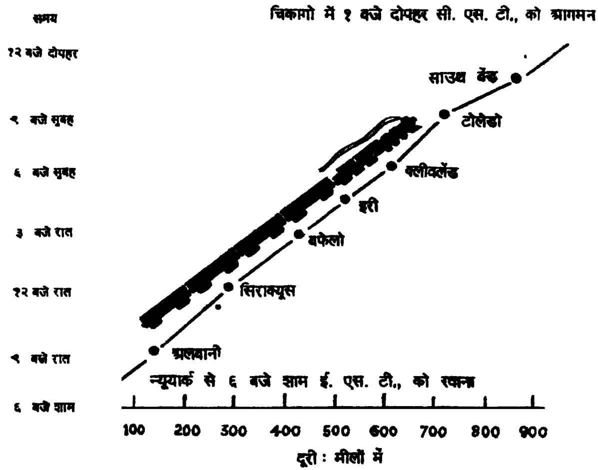
स्पष्ट हो जाती है। 'अखण्डता' का अर्थ है, जो निरन्तर जारी है। उदाहरण-स्वरूप रूलर एक एकविस्तारात्मक आकाशीय अखण्डता है। अधिकांश रूलर इंचों और उसके टुकड़ों—एक-सोलहवें हिस्से तक—में विभाजित रहते हैं।

लेकिन एक ऐसे रूलर की कल्पना कर सकना सम्भव है, जिसमें एक इंच के दस लाखवें या दस अरबवें हिस्से को भी स्पष्ट किया गया हो। सिद्धान्ततः ऐसा कोई कारण नहीं है कि किसी चीज का क्रमशः लघुतर रूप न होता चला जाये। अखण्डता की विशेषता यह है कि किन्हीं दो बिन्दुओं को विभाजित करनेवाला अन्तर असंख्य रूप से विभाजित किया जा सकता है।

एक रेलमार्ग एकविस्तारात्मक आकाशीय अखण्डता है और उस पर चल रही गाड़ी का चालक किसी भी समय किसी एक समन्वयात्मक बिन्दु—एक स्टेशन या मील का पत्थर—को देख कर अपनी अवस्थिति को मालूम कर सकता है। परन्तु एक जहाज के कप्तान को दो विस्तारों की चिन्ता करनी पड़ती है। समुद्र की सतह एक द्विविस्तारात्मक अखण्डता है और वे समन्वयात्मक बिन्दु, जिनसे नाविक द्विविस्तारात्मक अखण्डता में अपनी अवस्थिति का निश्चय करता है, अक्षांश और देशान्तर हैं। एक विमान-चालक को अपना विमान एक त्रिविस्तारात्मक अखंडता के बीच से ले जाना पड़ता है, अतः उसे न केवल अक्षांश और देशांतर की, बल्कि पृथ्वी से अपनी ऊँचाई का भी ध्यान रखना पड़ता है। एक विमान चालक की अखण्डता, जिस रूप में हम आकाश को देखते हैं, उसी से बनती है। दूसरे शब्दों में, हमारे संसार का दिक् एक त्रिविस्तारात्मक अखण्डता है।

लेकिन गति से सम्बन्धित किसी प्राकृतिक घटना की चर्चा करते समय दिक् में उसकी अवस्थिति को ही व्यक्त करना पर्याप्त नहीं है। यह भी बतलाना आवश्यक है कि काल में स्थिति का परिवर्तन कैसे होता है। अतएव, न्यूयार्क से शिकागो जानेवाली एक्सप्रेस गाड़ी का एक सही चित्र प्रस्तुत करने के

लिए इतना कह देना ही काफी नहीं है कि वह न्यूयार्क से अलबानी, वहाँ से सिराक्यूस, फिर वहाँ से क्लीवलैण्ड और वहाँ से टोलेडो तथा उसके बाद चिकागो जाती है, बल्कि यह बतलाना भी जरूरी है कि उन स्थानों पर वह किस समय पहुँचती है। यह कार्य या तो समय-सारिणी से पूरा हो सकता है या



एक द्विविस्तारात्मक दिक्-काल-अखंडता के रूप में चित्रित, पश्चिम की ओर जानेवाली न्यूयार्क-चिकागो एक्सप्रेस

दृश्य-चित्र से। यदि न्यूयार्क और चिकागो के बीच के मील, एक लकीर खींचे हुए कागज पर नीचे की ओर निश्चित किये जायें; घंटे तथा मिनट लम्बित रूप में दिखाये जायें और पृष्ठ के एक कोने से सामने के दूसरे कोने तक एक लकीर खींच कर गाड़ी की चाल प्रदर्शित की जाये, तो द्विविस्तारात्मक दिक्-काल-अखण्डता में गाड़ी की प्रगति प्रदर्शित होगी। इस तरह के नक्शों से अधिकांश समाचार-

पत्र-पाठक परिचित हैं; उदाहरणस्वरूप स्टाक-मार्केट का नक्शा द्विविस्तारात्मक डालर-काल-अखण्डता में आर्थिक घटनाओं को प्रकट करता है। इसी तरह न्यूयार्क से लास एंजिल्स जानेवाले एक विमान की उड़ान को एक चतुर्विस्तारात्मक दिक् काल-अखंडता में चित्रित किया जा सकता है। यह तथ्य कि विमान x अक्षांश, y देशांतर और z ऊँचाई पर है, विमान-कम्पनी के यातायात-व्यवस्थापक के लिए कोई महत्व नहीं रखता, यदि सम्बन्धित काल की जानकारी न हो। अतएव काल चौथा विस्तार है। और, यदि कोई उड़ान को उसके सम्पूर्ण रूप में—एक प्राकृतिक यथार्थता के रूप में—देखना चाहता है, तो इसे पृथक्-पृथक् उड़ान, चढ़ाई, सरकाव और उतार के रूप में नहीं बाँटा जा सकता। इसे तो एक चतुर्विस्तारात्मक दिक्-काल-अखण्डता के रूप में ही सोचना पड़ेगा।

× × ×

चूँकि काल एक अग्राह्य परिमाण है, चतुर्विस्तारात्मक दिक्-काल-अखंडता का कोई चित्र या नमूना तैयार कर सकना सम्भव नहीं है। किन्तु इसकी कल्पना की जा सकती है और गणित के रूप में इसे प्रस्तुत भी किया जा सकता है। यदि किसी वैज्ञानिक को हमारी सौर-प्रणाली के परे, आकाशगंगा के सितारों से भरे मेघों और समूहों के परे एवं शून्य में प्रज्ज्वलित ज्योतिर्मालाओं के परे के ब्रह्माण्ड को समझना है, तो उसे इन सबको आकाश की त्रिविस्तारात्मकता और काल के एक विस्तार की अखण्डता के रूप में देखना पड़ेगा। अपने मानस में हम इन विस्तारों को अलग-अलग कर देते हैं; हमें एक ज्ञान तो दिक् का होता है और दूसरा काल का। लेकिन यह पृथक्करण पूर्णतः आत्मगत होता है और जैसा कि सापेक्षता का विशिष्ट सिद्धांत बतलाता है, दिक् और काल पृथक्-पृथक् सापेक्षिक परिमाण हैं, जो अलग-अलग पर्यवेक्षकों के समक्ष विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। विज्ञान की आकांक्षा के अनुकूल, ब्रह्माण्ड की किसी भी वास्तविक व्याख्या में, काल-विस्तार को

दिक्-विस्तार से केवल उस हद तक ही अलग किया जा सकता है, जितना एक मकान या वृक्ष की चौड़ाई और मोटाई से लम्बाई को। महान् जर्मन गणितज्ञ हरमन मिंकोवस्की के अनुसार, जिसने दिक्-काल-अखंडता के गणित को, सापेक्षतर के सिद्धान्तों को व्यक्त करने के लिए, एक सरल माध्यम के रूप में विकसित किया, "दिक् और काल पृथक्-पृथक् रूप से केवल छायाओं में विलीन हो गये हैं और उन दोनों के एक प्रकार के संयोग में ही कोई यथार्थता निहित रहती है।"

लेकिन ऐसा कदापि नहीं सोचा जाना चाहिये कि दिक्-काल-अखंडता केवल एक गणितात्मक रचना है। संसार एक दिक्-काल-अखंडता है; सारा यथार्थ दिक् और काल में निहित है और ये दोनों अविभाज्य हैं। काल की सारी पैमाइशें वस्तुतः दिक् की पैमाइशें हैं और इसी तरह दिक् की पैमाइश, काल की पैमाइश पर निर्भर करती है। सेकण्ड, मिनट, घंटे, दिन, सप्ताह, महीने, ऋतुएँ और वर्ष—सूरज, चाँद और सितारों की दृष्टि से दिक् में पृथ्वी की स्थिति की पैमाइशें हैं। इसी तरह अक्षांश और देशान्तर, जिनके द्वारा मनुष्य पृथ्वी पर अपनी दिक्-सम्बन्धी अवस्थिति की व्याख्या करता है, मिनटों और सेकण्डों में मापे जाते हैं और उनका सही हिसाब लगाने के लिए दिन का काल-विशेष और वर्ष का दिन-विशेष जानना आवश्यक हो जाता है। विषुवत् रेखा, कर्क रेखा या उत्तरी ध्रुव वृत्त-जैसे पार्थिव चिह्न केवल परिवर्तनशील ऋतुओं का काल निश्चित करनेवाली धूप-घड़ियाँ हैं; प्रमाणयाम्योत्तर (Prime Meridian) दैनिक काल का एक नियामक है और 'दोपहर' सूरज के एक कोण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

इतना होने पर भी, दिक् और काल की समानता तभी प्रकट होती है, जब सितारों के बारे में अध्ययन किया जाता है। परिचित नक्षत्रों में कुछ 'यथार्थ' इसलिए माने जाते हैं कि उनके सितारों में वास्तविक गुरुत्वाकर्षण-प्रणालियाँ होती हैं, जो एक-दूसरे से सम्बद्ध रूप में व्यवस्थित ढंग से चक्कर लगाती हैं।

बाकी केवल प्रत्यक्ष होते हैं– दृष्टि-सीमा के पार्श्ववर्ती असम्बद्ध सितारों की सम्भावित निकटता-द्वारा निर्मित दृष्टिगत घटनाओं के अनुसार उनके स्वरूप होते हैं। ऐसे दृष्ट नक्षत्रों में से किन्हीं दो समान चमकदार सितारों को देख कर कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि वे अगल-बगल में अवस्थित हैं, जब कि उनमें से कोई एक ४० प्रकाश-वर्ष और कोई ४०० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर हो सकता है।

अतः, स्पष्टतः ही, नक्षत्र-विज्ञानवेत्ता को एक दिक्-काल-अखण्डता के रूप में ब्रह्माण्ड के बारे में सोचना पड़ता है। जब वह अपने टेलिस्कोप से झाँकता है, तो केवल दिक् में बाहर की ओर नहीं देखता, बल्कि पीछे मुड़ कर काल पर भी नजर डालता है। उसके सूक्ष्मग्राही कैमरे ५० करोड़ प्रकाश-वर्ष दूरस्थ द्वीपीय ब्रह्माण्डों की चमक को तो देख सकने में समर्थ होते ही हैं, उन धुँधली किरणों को भी देखते हैं, जिन्होंने सदियों-पूर्व— जब पहले कीटाणु सागरों की गहराइयों से निकल कर पृथ्वी पर रेंगने लगे थे— अपनी यात्रा आरम्भ की थी। उसका सूक्ष्मवीक्षण-यंत्र उसे यह भी बतलाता है कि ये विशाल बाह्य प्रणालियाँ प्रति सेकण्ड ३५,००० मील तक की गति से हमारी ज्योतिर्माला से काफी दूरस्थ क्षेत्र में घूम रही हैं। इसे और विशिष्ट रूप में कहें, तो कहना पड़ेगा कि ५० करोड़ वर्ष पहले से वे हमसे दूर हट रही हैं। 'अभी' वे कहाँ हैं या 'अभी' उनका अस्तित्व कहाँ है, कोई नहीं कह सकता। यदि हम अपने ब्रह्माण्ड के चित्र को दिक् के आत्मगत त्रिविस्तारात्मक और स्थानीय काल के एकविस्तारात्मक रूप में विभक्त कर दें, तो इन ज्योतिर्मालाओं का दृष्ट-अस्तित्व, फोटोग्राफिक प्लेटों पर उभरनेवाले प्राचीन मंद प्रकाश से अधिक नहीं रहेगा। वे अपने संदर्भ के उचित ढाँचे में ही, जो कि चतुर्विस्तारात्मक आकाश-काल-अखंडता है, प्राकृतिक यथार्थता प्राप्त करती हैं।

× × ×

पृथ्वी पर मनुष्य का अस्तित्व थोड़े समय का ही है, पर वह अहंकारपूर्वक

डा. आइन्स्टीन और ब्रह्माण्ड

अपने मानस की अतीत, वर्तमान और भविष्य-सम्बन्धी घटनाओं को, अपनी निजी भावनाओं के अनुसार रूप प्रदान करता है। लेकिन मनुष्य की अपनी चेतना के अतिरिक्त, यथार्थता का दृष्ट संसार– ब्रह्माण्ड– और कहीं नहीं चित्रित होता; यह केवल अपना अस्तित्व रखता है। यह अपने सम्पूर्ण रूप में केवल भौतिक बुद्धि में ही अंकित हो सकता है। लेकिन इसे एक गणितज्ञ प्रतीकात्मक रूप में– चतुर्विस्तारात्मक दिक्-काल-अखंडता के रूप में– भी उपस्थित कर सकता है। अतः सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त और गुरुत्वाकर्षण– वह अदृश्य शक्ति, जो ब्रह्माण्ड को एक साथ रखती है और उसके स्वरूप तथा आकार को निश्चित करती है– के बारे में उस गणितज्ञ की धारणा को समझने के लिए दिक्-काल-अखण्डता का ज्ञान अति आवश्यक है।

— दस —

सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त में आइन्स्टीन ने गति के स्वरूप का अध्ययन किया और बतलाया कि ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई स्थिर प्रमाण नहीं है, जिसके द्वारा मनुष्य पृथ्वी की 'निरपेक्ष' गति या अन्य गतिशील प्रणाली का निश्चय कर सके। गति का अनुमान किसी दूसरी वस्तु के संदर्भ में स्थिति के परिवर्तन-मात्र से किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, हम जानते हैं कि पृथ्वी २० मील प्रति सेकण्ड की गति से सूरज का चक्कर लगा रही है। परिवर्तनशील ऋतुओं से भी यह तथ्य व्यक्त होता है। लेकिन चार सौ वर्ष पूर्व तक मनुष्य सोचता था कि आकाश में सूरज के स्थान-परिवर्तन से यह पता चलता है कि वह पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है और इसी आधार पर प्राचीन नक्षत्र-विज्ञान-वेत्ताओं ने खगोलीय यांत्रिकता की एक विशुद्ध व्यावहारिक प्रणाली को विकसित किया, जिसके आधार पर परलोकों के बड़े-बड़े तथ्यों के बारे में वे सही-सही ढंग से भविष्यवाणी कर सके। उनकी यह कल्पना स्वाभाविक ही

थी, क्योंकि हम दिक् में अपनी गति को अनुभव नहीं कर सकते ; साथ ही, किसी भौतिक परीक्षण ने इस बात को प्रमाणित नहीं किया है कि वस्तुतः पृथ्वी गतिशील है। और, यद्यपि सभी ग्रह, तारे, ज्योतिर्मालाएँ और ब्रह्माण्ड की गतिशील प्रणालियाँ अबाध रूप से निरंतर अपना स्थान-परिवर्तन कर रही हैं, तो भी उनकी गतिविधियों को केवल उनकी परस्पर-स्थितियों से ही समझा जा सकता है। यदि एक को छोड़ कर ब्रह्माण्ड के सारे पदार्थ हटा लिये जाते, तो यह कोई भी नहीं बतला सकता था कि वह पदार्थ स्थिर है या शून्य में एक लाख मील प्रति सेकण्ड की गति से चल रहा है। गति एक सापेक्षिक अवस्था है। जब तक कोई ऐसी दूसरी वस्तु नहीं होगी, जिससे तुलना की जा सके, तब तक किसी वस्तु की गति के बारे में कुछ कहना निरर्थक है।

सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त को प्रकाशित करने के थोड़े समय बाद ही आइन्स्टीन को इस बात का अचरज हुआ कि क्या वास्तव में ऐसी कोई गति नहीं है, जो 'निरपेक्ष' मानी जा सके और गति-प्रणाली पर पड़नेवाले उसके प्राकृतिक प्रभाव के आधार पर– किसी अन्य प्रणाली को संदर्भ-रूप में रखे बिना– जिसका पता लगाया जा सके? उदाहरण के लिए, बिना हलचल के– शांतिपूर्वक– चलनेवाली किसी गाड़ी में बैठा कोई पर्यवेक्षक गाड़ी के अन्दर परीक्षण करके यह नहीं कह सकता कि उसकी गाड़ी चल रही है या रुकी है। लेकिन यदि गाड़ी का चालक अकस्मात् ब्रेक लगाये या गाड़ी को झटके के साथ खोले, तो वह उस झटके के कारण गाड़ी की गति के परिवर्तन को अनुभव कर सकता है। और, यदि गाड़ी मुड़ती है, तो अपने शरीर के झुकाव से– अपना संतुलन बनाये रखने के प्रयत्न के कारण– वह यह समझ सकेगा कि गाड़ी किस दिशा में मुड़ रही है। इसलिए आइन्स्टीन ने तर्क उपस्थित किया कि यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में केवल एक पदार्थ– उदाहरणस्वरूप, पृथ्वी– होता और अकस्मात् अव्यवस्थित रूप में चक्कर खाने लगता, तो उसके निवासियों को, उत्पन्न असुविधा के कारण, अपनी गति का अन्दाज मिल जाता। इससे प्रकट होता है कि असम

गति– यथा, शक्तियों और वेगवृद्धियों से उत्पन्न गति– अन्ततः 'निरपेक्ष' है। इससे यह भी प्रकट होता है कि शून्य दिक् एक संदर्भ-प्रणाली का काम दे सकता है, जिसके अंतर्गत 'निरपेक्ष' गति को पहचाना जा सकता है।

आइन्स्टीन के लिए, जिनका विचार था कि दिक् कुछ भी नहीं है और गति सापेक्षिक है, असम गति का प्रत्यक्ष विचित्र व्यापार बहुत चिन्ता पैदा करनेवाला था। सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त में उन्होंने प्रस्तावना के रूप में यह सामान्य धारणा कायम की थी कि एक-दूसरे से सापेक्षित रूप में समता-पूर्वक घूमनेवाली सारी प्रणालियों के लिए प्रकृति के नियम समान हैं। साथ ही, प्रकृति की ब्रह्माण्डीय शान्ति में दृढ़ विश्वास रखने के कारण उन्होंने यह मानने से इन्कार कर दिया कि कोई भी असम गतिवाली प्रणाली अवश्य ही एक असाधारण विशिष्ट प्रणाली होगी, जिसमें प्रकृति के नियम भिन्न होते होंगे। इसलिए सापेक्षता के अपने साधारण सिद्धान्त की मौलिक प्रस्तावना के रूप में उन्होंने कहा–"प्रकृति के नियम सभी प्रणालियों के लिए– उनकी गति चाहे जो हो– समान हैं।" अपनी इस धारणा को विकसित करने के उद्देश्य से उन्होंने गुरुत्वाकर्षण के नये नियम निर्धारित किये, जिन्होंने ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी उन सारी धारणाओं को विचलित कर दिया, जो मनुष्यों ने पिछले तीन सौ वर्षों में कायम की थीं।

× × ×

आइन्स्टीन को प्रेरणा देनेवाला तत्त्व न्यूटन का जड़ता-सम्बन्धी सिद्धान्त था, जिससे स्कूली छात्र भी परिचित हैं। इस सिद्धान्त में कहा गया है–"हर पदार्थ अपनी विश्रान्ति-अवस्था में, या एक सीध में, एकरूप गति में रहता है और अन्य शक्तियों के दबाव पर ही इस अवस्था में परिवर्तन होता है।" इसलिए यह जड़ता ही है, जो रेलगाड़ी के धीमी होने, तेज होने या मोड़ लेने पर हमारी विचित्र अनुभूतियों को जन्म देती है। हमारा शरीर एक दिशा में–

एक रूप में– रहना चाहता है और जब गाड़ी हम पर एक विपरीत दबाव डालती है, तो हमारे शरीर में अन्तर्निहित जड़ता उस शक्ति का प्रतिरोध करने लगती है। यह जड़ता ही अनेक डिब्बों को खींचते समय इंजन को 'झक्-झक्' की आवाज करने को बाध्य करती है।

लेकिन यहाँ एक दूसरा सवाल भी पैदा होता है। यदि डिब्बे भरे होते हैं, तो इंजिन को, खाली डिब्बे खींचने की अपेक्षा, अधिक परिश्रम करना पड़ता है और उसमें अधिक कोयला जलाना पड़ता है। इसलिए न्यूटन ने अपने जड़ता के सिद्धान्त में एक दूसरा नियम भी जोड़ा, जिसमें कहा गया था कि किसी पदार्थ के संचालन के लिए शक्ति की आवश्यकता पदार्थ की मात्रा पर निर्भर करती है। साथ ही, यह भी कहा गया था कि यदि पृथक्-पृथक् मात्रावाले दो पदार्थों पर समान शक्ति का उपयोग किया जाये, तो बड़ी मात्रावाले पदार्थ की अपेक्षा छोटी मात्रावाले पदार्थ की गति अधिक तीव्र होगी। यह सिद्धान्त मनुष्य के प्रति दिन के अनुभवों– बच्चों की गाड़ी खींचने से लेकर तोप चलाने तक– में सच्चा उतरता है। यह केवल इस प्रत्यक्ष तथ्य को सामने रखता है कि छोटी गेंद को एक तोप के गोले की तुलना में, अधिक तीव्रता से और अधिक दूरी तक फेंका जा सकता है।

किन्तु एक ऐसी विचित्र स्थिति भी होती है, जिसमें ऐसा प्रतीत होता है कि गतिशील पदार्थ की तीव्रता और उसकी राशि के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। गिरते समय छोटी गेंद और तोप के गोले की गति समान ही होती है— इस तथ्य को पहले-पहल गैलिलियो ने अनुभव किया था। उसने परीक्षण के द्वारा यह सिद्ध किया कि, वायु-सम्बन्धी प्रतिरोध को छोड़ कर, सभी पदार्थ– चाहे उनका आकार अथवा रचना-तत्त्व जो हो– समान गति से ही नीचे की ओर गिरते हैं। एक छोटी गेंद और रुमाल केवल इसलिए विभिन्न गतियों में नीचे की ओर गिरते हैं कि रुमाल वायु-सम्बन्धी प्रतिरोध के लिए अधिक सुविधाएँ प्रदान करता है। लेकिन समान आकार की वस्तुएँ, जैसे पत्थर, छोटी गेंद या

तोप का गोला, समान गति से ही गिरती हैं। (वायुशून्य स्थान में एक रुमाल और तोप का गोला, दोनों एक ही गति से साथ-साथ गिरेंगे।) यह बात न्यूटन के जड़ता के सिद्धान्त का खण्डन करती दीख पड़ती है, क्योंकि यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ऊपर से नीचे आने में क्यों सभी पदार्थ– अपनी मात्रा या आकार से प्रभावित हुए बिना–समान गति धारण करते हैं, जब कि पृथ्वी के समानांतर जाते समय, समान शक्ति का उपयोग किये जाने पर भी, उनकी गति राशि से प्रभावित होती है। इससे ऐसा लगता है कि जड़ता-सम्बन्धी बात केवल धरती के समानान्तरवाली यात्रा में ही लागू होती है।

इस पहेली का न्यूटन ने जो समाधान प्रस्तुत किया है, वह उसके गुरुत्वाकर्षण-सम्बन्धी सिद्धान्त में निहित है। इस सिद्धान्त में कहा गया है कि वह रहस्यमयी शक्ति, जिससे एक भौतिक पदार्थ दूसरे पदार्थ को आकर्षित करता है, आकर्षित करनेवाले पदार्थ की राशि के अनुसार बढ़ती है। जितना बड़ा पदार्थ होगा, उतना ही बड़ा उसका गुरुत्वाकर्षण होगा। यदि एक पदार्थ छोटा है, तो गति के प्रतिरोध की उसकी जड़ता या प्रवृत्ति भी कम होगी, लेकिन गुरुत्वाकर्षण अपनी जिस शक्ति का उस पर प्रयोग करेगा, वह भी छोटी ही होगी। यदि एक पदार्थ बड़ा है, तो उसकी जड़ता भी बड़ी होगी, लेकिन गुरुत्वाकर्षण-द्वारा उस पर प्रयुक्त शक्ति भी बड़ी होगी। अतएव गुरुत्वाकर्षण अपनी शक्ति का प्रयोग किसी वस्तु की जड़ता के अनुपात में ही करता है। और, यही कारण है कि सभी पदार्थ, अपनी जड़ता की मात्रा से प्रभावित हुए बिना, समान गति से, नीचे गिरते हैं।

इस उल्लेखनीय संयोग– गुरुत्वाकर्षण और जड़ता का उचित संतुलन–को विश्वास के आधार पर स्वीकार किया गया था, लेकिन न्यूटन के बाद के तीन सौ वर्षों तक इसे न तो कभी समझा गया और न इसकी व्याख्या ही की गयी। सभी आधुनिक यांत्रिकताएँ न्यूटन के सिद्धान्तों से ही प्रकट हुईं और ऐसा प्रतीत होने लगा कि प्रकृति उसके नियमों से सहयोग करके चल रही है।

लेकिन आइन्स्टीन ने, जिनके सभी अन्वेषण सिद्धान्तों में अविश्वास के फलस्वरूप प्रकट हुए, न्यूटन के कई सिद्धान्तों को मानने से इन्कार कर दिया। उन्होंने इस धारणा में सन्देह व्यक्त किया कि गुरुत्वाकर्षण और जड़ता का संतुलन केवल एक प्राकृतिक संयोग है। उन्होंने इस धारणा का भी खंडन कर दिया कि गुरुत्वाकर्षण एक ऐसी शक्ति है, जिसका उपयोग काफी लम्बी दूरी तक किया जा सकता है। यह सिद्धान्त भी आइन्स्टीन को घोर असम्भव प्रतीत हुआ कि पृथ्वी दिक् में काफी आगे बढ़ कर किसी पदार्थ को अपनी ओर उस शक्ति के सहारे खींच सकती है, जो अद्‌भुत और समान रूप से खींचे जानेवाले पदार्थ के जड़ता-प्रतिरोध की शक्ति के बराबर होती है। अतएव, अपनी इन अस्वीकृतियों के फलस्वरूप उन्होंने गुरुत्वाकर्षण के एक नये सिद्धान्त को जन्म दिया, जिसने न्यूटन के विशिष्ट नियमों की अपेक्षा प्रकृति का एक अधिक सही रूप सामने उपस्थित किया। यह तथ्य परीक्षणों से भी प्रमाणित हो चुका है।

— ग्यारह —

अपने रचनात्मक चिन्तन के सामान्य ढर्रे के अनुसार ही आइन्स्टीन ने एक काल्पनिक स्थिति को जन्म दिया। निस्संदेह ही इस स्थिति से बहुत-से दूसरे लोगों का, ऊँघते समय या स्वप्न देखते समय, साक्षात्कार हुआ ह। उन्होंने एक बहुत ऊँची इमारत की कल्पना की, जिसके अन्दर तारों से टूट कर उन्मुक्त रूप से गिर रहे 'एलिवेटर' ('लिफ्ट' की तरह का एक यंत्र) का उन्होंने चित्रण किया। 'एलिवेटर' के अन्दर कुछ भौतिक विज्ञानवेत्ता हैं, जो इस बात से लापरवाह-से हैं कि उनका 'एलिवेटर' दुर्घटनाग्रस्त हो सकता है। अत: वे अपना परीक्षण जारी रखते हैं। वे अपनी जेबों से एक फाउण्टेनपेन, एक सिक्का और चाभियों का एक गुच्छा निकालते हैं और अपने हाथ से छोड़ देते हैं। नतीजा यह निकलता है कि उन लोगों को फाउण्टेनपेन, सिक्का और चाभियों का गुच्छा बीच में ही लटका दिखाई पड़ता है—नीचे नहीं गिरता ; क्योंकि न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण-सिद्धान्त के अनुसार वे सब-के-सब, 'एलिवेटर'

और वैज्ञानिकों-सहित, समान गति से नीचे की ओर गिर रहे हैं। चूंकि 'एलिवेटर' में स्थित व्यक्ति अपनी स्थिति से अपरिचित हैं, वे इस विचित्र घटना को अपनी किसी दूसरी धारणा के अनुसार व्यक्त कर सकते हैं। वे ऐसा सोच सकते हैं कि वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र से बाहर भेज दिये गये हैं और शून्य दिक् में कहीं लटके हैं। उनके ऐसा सोचने का पर्याप्त कारण भी है। यदि उनमें से कोई उछले, तो वह अपनी कूदने की शक्ति के आनुपातिक वेग से ही छत की ओर पहुँचेगा। यदि वह अपनी कलम या चाभियाँ किसी दिशा में फेंकेगा, तो वे एकरूप से उस दिशा में तब तक बढ़ेंगे, जब तक 'एलिवेटर' की प्राचीर से टकराते नहीं। इस प्रकार हर वस्तु न्यूटन के जड़ता के सिद्धान्त से प्रभावित है और अपनी स्थिरावस्था या एक सीध में एकरूप गति में विद्यमान रहती है। यहाँ 'एलिवेटर' एक प्रकार से जड़-प्रणाली बन गयी है और उसके अन्दर के लोगों के पास यह कहने का कोई उपाय नहीं है कि वे गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में गिर रहे हैं या सभी बाह्य शक्तियों से मुक्त हो शून्याकाश में विचर रहे हैं।

इसके बाद आइन्स्टीन दृश्य बदलते हैं। भौतिक विज्ञानवेत्ता अब भी 'एलिवेटर' में ही हैं, लेकिन इस बार वे वस्तुतः किसी खगोलीय वस्तु की आकर्षण-शक्ति से दूर, शून्य दिक् में हैं। 'एलिवेटर' के शीर्ष-भाग में एक तार बँधा है ; कोई अदृश्य शक्ति उस तार को खींचना शुरू करती है और 'एलिवेटर' शनैः-शनैः ऊपर की ओर उठता है यानी उसकी गति क्रमशः तेज होती जा रही है। इस बार भी 'एलिवेटर' के अंदर के लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं है कि वे कहाँ है और अपनी स्थिति जानने के लिए वे परीक्षण में संलग्न हैं। अब वे यह अनुभव करते हैं कि उनके पैरों पर फर्श का दबाव पड़ रहा है। इस अवस्था में यदि वे उछलेंगे, तो उनका सिर ऊपर छत से नहीं टकरायेगा, क्योंकि उनके साथ-ही-साथ फर्श भी ऊपर की ओर उठा आ रहा है। यदि वे अपने हाथ से कुछ सामग्रियाँ छोड़ेंगे, तो वे गिरती दिखेंगी। यदि वे ऊपर-नीचे न फेंक कर सामने की दिशाओं में चीजें फेकेंगे, तो वे एक साथ एक सीध में

नहीं जायेंगी, बल्कि फर्श के अनुपात में उनमें घुमाव आ जायेगा। लेकिन वे वैज्ञानिक, जिन्हें इस बात का तनिक भी ज्ञान नहीं है कि उनका बिना खिड़की का 'एलिवेटर' वस्तुतः अन्तःनक्षत्रीय दिक् की ओर बढ़ रहा है, यही अनुमान लगायेंगे कि वे पृथ्वी से संयुक्त और गुरुत्वाकर्षण-शक्ति से सामान्य मात्रा में प्रभावित एक स्थिर कमरे में सामान्य अवस्था में ही हैं। वस्तुतः उनके पास यह बतलाने का कोई साधन नहीं होगा कि वे एक गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में विश्रान्ति-अवस्था में हैं या शनैः-शनैः बाह्य आकाश की ओर बढ़े जा रहे हैं, जहाँ गुरुत्वाकर्षण बिल्कुल ही नहीं है!

यही उलझन उनके सामने तब भी होती, यदि उनका कमरा बाह्य दिक् में विचरण करनेवाली किसी बड़ी वस्तु से बँधा होता। वे अनुभव करते कि कोई अद्भुत शक्ति उन्हें उनके चक्कर खानेवाले कमरे के मध्य से खींचने का प्रयत्न कर रही है, जब कि उस 'एलिवेटर' से बाहर-स्थित कोई भी पर्यवेक्षक शीघ्र ही उस शक्ति को जड़ता की शक्ति के रूप में (या चक्कर खानेवाले पदार्थों के लिए निश्चित शब्द 'केन्द्र-त्यागी' (Centrifugal) शक्ति के रूप में) पहचान लेगा। लेकिन उस कमरे के अन्दर के व्यक्ति, जो अपनी दुःस्थिति से अपरिचित हैं, इसे गुरुत्वाकर्षण की ही शक्ति मानेंगे। चूँकि कमरे का अंतर्भाग खाली और बिना किसी सजावट का है; अतः उन्हें यह बतलानेवाली वहाँ कोई चीज नहीं होगी कि कौन-सा भाग फर्श है और कौन भाग छत! उन्हें केवल उस शक्ति का ही भान होगा, जो उन्हें कमरे के अन्दर इधर-उधर खींच रही है। इस प्रकार, एक बाहरी पर्यवेक्षक जिसको चक्कर खानेवाले कमरे की 'बाहरी दीवार' कहेगा, उसे उस कमरे के व्यक्ति फर्श मानेंगे। एक क्षणिक परावर्तन (Reflection) यह व्यक्त करता है कि शून्य दिक् में 'ऊपर' और 'नीचे' नाम की कोई चीज नहीं है। हम जिसे पृथ्वी पर 'नीचे' कहते हैं, वह केवल गुरुत्वाकर्षण की दिशा है। सूरज पर स्थित एक व्यक्ति आस्ट्रेलिया के लोगों, अफ्रीकियों और अर्जेण्टाइना-निवासियों को देख कर यही कहेगा कि

पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्द्ध के वे लोग सिर के बल खड़े हैं। इसी संकेत के अनुसार, दक्षिणी ध्रुव पर ऐडमिरल बाइर्ड की उड़ान एक ज्यामितीय काल्पनिक कथा है; वास्तव में वे उसके नीचे गये थे– उनका सिर नीचे था और पैर ऊपर। अतः चक्कर लगानेवाले कमरे के अन्दर स्थित व्यक्ति यही पायेंगे कि उनके सभी परीक्षणों के बिल्कुल वही परिणाम निकले, जो उनके कमरे के 'ऊपर' की ओर जाते समय निकले थे। उनके पैर 'फर्श' पर ही जमे रहते हैं। चूँकि ठोस पदार्थ 'गिरते' हैं; अतः एक बार फिर वे इस स्थिति को गुरुत्वाकर्षण का परिणाम और अपने को एक गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में स्थिर मानेंगे।

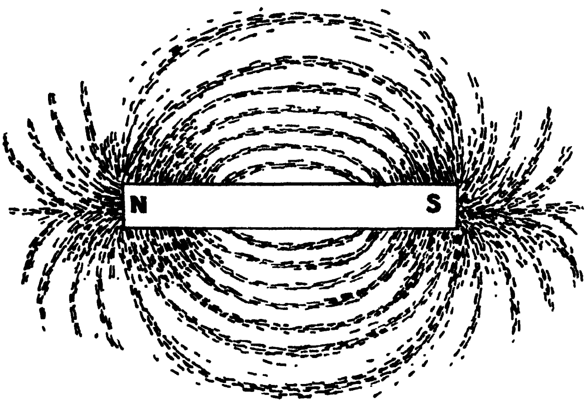
× × ×

इन काल्पनिक घटनाओं से आइन्स्टीन ने एक निष्कर्ष निकाला, जो कि सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। भौतिक विज्ञानवेत्ता इसे 'गुरुत्वाकर्षण और जड़ता की समानता का सिद्धान्त' (Principle of Equivalence of Gravitation and Inertia) के नाम से जानते हैं। यह सिद्धान्त यह बतलाता है कि जड़ शक्तियों (वेग, पलायन, केन्द्र-त्यागी शक्ति, आदि) द्वारा उत्पन्न गति को गुरुत्वाकर्षण-शक्ति-द्वारा उत्पन्न गति से पृथक् करने का कोई उपाय नहीं है। इस सिद्धान्त की उपयुक्तता विमान-चालक अच्छी तरह जानते हैं, क्योंकि विमान में जड़ता और गुरुत्वाकर्षण के प्रभावों को अलग-अलग करना असम्भव होता है। विमान को नीचे गोता लगा कर ऊपर ले जाते समय की शारीरिक अनुभूति ठीक उसी तरह की होती है, जैसी काफी तेजी में चलते विमान को अकस्मात् मोड़ने में होती है। दोनों ही मामलों में विमान-चालक के समक्ष 'जी-लोड' (Gravity Load अथवा गुरुत्व-भार) की स्थिति उपस्थित होती है, सिर का रक्त नीचे के अंगों में आ जाता है और शरीर सीट में कस कर सट जाता है। एक ऐसे चालक के लिए, जो 'लापरवाही' से विमान चला रहा हो और जिसके पास यंत्रादि न हों, ये अवस्थाएँ काफी गम्भीर, बल्कि प्राणघातक भी, साबित हो सकती हैं।

इस सिद्धान्त में, जो कि साधारण सापेक्षता का मुख्याधार है, आइन्स्टीन ने गुरुत्वाकर्षण की पहेली और 'निरपेक्ष' गति की समस्या, दोनों का समाधान पा लिया। इससे यह साबित हुआ कि अंततः बहुरूपी गति में कुछ भी असाधारणता या 'निरपेक्षता' नहीं है; क्योंकि बहुरूपी गति के, जो सामान्य धारणा के अनुसार दिक् में अकेली रहने पर भी किसी वस्तु की गति-विषयक अवस्था को व्यक्त कर सकती है, प्रभाव गुरुत्वाकर्षण के प्रभावों से पृथक् नहीं किये जा सकते। इसी कारण, चक्कर खानेवाले 'एलिवेटर' के मामले में, एक पर्यवेक्षक ने जिसे जड़ता का खिचाव या केन्द्र-त्यागी शक्ति समझ कर गति का प्रभाव मान लिया, उसे एक दूसरे पर्यवेक्षक ने गुरुत्वाकर्षण की घटना माना। गति या दिशा के परिवर्तन से उत्पन्न दूसरे जड़ प्रभावों का भी सम्बन्ध इसी तरह परिवर्तनशील गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र से जोड़ा जा सकता है। अतएव सापेक्षता की मूल प्रस्तावना सत्य ठहरती है; गति के सम्बन्ध में—चाहे वह एकरूप हो या बहुरूपी—कोई भी निश्चय किसी संदर्भ-प्रणाली की सहायता से ही किया जा सकता है; निरपेक्ष गति का कहीं अस्तित्व नहीं है।

जिस तलवार से आइन्स्टीन ने निरपेक्ष गति के पंखधारी नाग को काटा, वह गुरुत्वाकर्षण था। लेकिन गुरुत्वाकर्षण क्या है? आइन्स्टीन का गुरुत्वाकर्षण न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण से सर्वथा भिन्न है। यह कोई 'शक्ति' नहीं है। आइन्स्टीन के अनुसार, यह विचार कि भौतिक वस्तुएँ एक-दूसरे को आकर्षित कर सकती हैं, एक भ्रम है, जो कि प्रकृति-सम्बन्धी गलत यांत्रिक धारणाओं के कारण पैदा हुआ है। जब तक ऐसा विश्वास किया जायेगा कि ब्रह्माण्ड एक बड़ा यंत्र है, तब तक ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है कि इसके विभिन्न पुर्जे एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। लेकिन विज्ञान ज्यों-ज्यों यथार्थता की खोज में गहराई में पहुँचता जाता है, यह स्पष्ट होता जाता है कि ब्रह्माण्ड बिल्कुल ही एक यंत्र की तरह नहीं है। अतएव आइन्स्टीन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त में शक्ति का कोई स्थान नहीं है। यह गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में पदार्थों—

उदाहरणस्वरूप ग्रह, आदि—के संचरण की व्याख्या करता है; लेकिन यह व्याख्या उनके 'आकर्षण' से नहीं, बल्कि उनके द्वारा अपनाये जानेवाले मार्गों से सम्बन्धित है। आइन्स्टीन के मतानुसार, गुरुत्वाकर्षण जड़ता का एक भाग-मात्र है; सितारों और ग्रहों की गतिविधियाँ उनकी स्वभावगत जड़ता से



एक छड़ का चुम्बक-क्षेत्र

उत्पन्न होती हैं और वे जो मार्ग अपनाते हैं, वे दिक् के वृत्तीय तत्त्वों—या अधिक सीधे शब्दों में, दिक्-काल-अखण्डता के वृत्तीय तत्त्वों—द्वारा निर्धारित होते हैं।

यद्यपि यह बड़ा अव्यावहारिक-सा प्रतीत होता है, बल्कि लोकविरुद्ध-सा भी लगता है, तथापि इस धारणा को त्यागने के साथ ही, कि भौतिक वस्तुएँ शून्य दिक् में लाखों मील की दूरी तय करके एक-दूसरे पर भौतिक शक्ति-मूलक प्रभाव डालती हैं, यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। न्यूटन के समय से ही 'सुदूरवर्ती कार्य-व्यापार' (Action at a distance) के इस सिद्धान्त ने वैज्ञा-

निकों को परेशान कर रखा है। उदाहरण के लिए, विद्युत् और चुम्बकीय गुणों को समझने में इसने खास तौर पर बाधा डाली। अब वैज्ञानिक ऐसा नहीं कहते कि चुम्बक किसी लोहे के टुकड़े को किसी रहस्यपूर्ण किन्तु तात्कालिक सुदूरवर्ती कार्य-व्यापार से अपनी ओर आकर्षित करता है। इसकी बजाय अब वे कहते हैं कि चुम्बक अपने आसपास के वातावरण में एक खास प्राकृतिक अवस्था –जिसे वे चुम्बकीय क्षेत्र कहते हैं– उत्पन्न कर देता है और यही क्षेत्र लोहे को अपने गुणों से प्रभावित करके उसे एक खास तरह का आचरण करने को बाध्य करता है। किसी भी प्राथमिक विज्ञान के विद्यार्थी को यह मालूम है कि चुम्बकीय क्षेत्र किस तरह का होता है; क्योंकि इसका ज्ञान प्राप्त करने की प्रणाली बहुत साधारण है– एक चुम्बक पर एक कड़ा कागज रख कर उस पर लोहे की कोई वस्तु घुमाने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। चुम्बकीय क्षेत्र और विद्युत्-क्षेत्र, ये दोनों ही प्राकृतिक यथार्थताएँ हैं। उनका एक निश्चित ढाँचा होता है। इस ढाँचे की व्याख्या जेम्स क्लार्क मैक्सवेल के क्षेत्रीय समीकरणों से होती है, जिनके कारण विगत शताब्दी में विद्युतीय और रेडियो-इंजीनियरिंग-सम्बन्धी सारे आविष्कारों का मार्ग प्रशस्त हुआ। गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र की ही भाँति एक प्राकृतिक यथार्थता है और इसके ढाँचे की व्याख्या अल्बर्ट आइन्स्टीन के क्षेत्रीय समीकरणों से होती है।

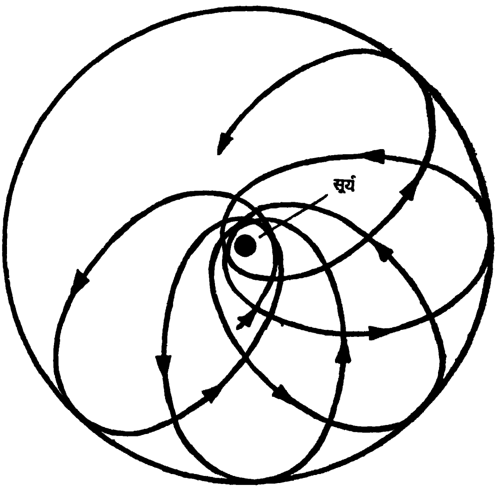
× × ×

जिस प्रकार मैक्सवेल और फैराडे ने यह अनुमान किया था कि चुम्बक अपने आसपास के वातावरण में कुछ तत्त्व बिखेरता है, उसी तरह आइन्स्टीन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सितारे, चंद्रमा और दूसरे खगोलीय पदार्थ अपने आसपास के आकाशमंडल में अपने निजी तत्त्व बिखेरते हैं और जिस तरह एक चुम्बकीय क्षेत्र में एक लोहे के टुकड़े की गतिविधि क्षेत्र की बनावट से निर्देशित होती है, उसी तरह गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में किसी वस्तु का मार्ग उस क्षेत्र की ज्यामितीय अवस्था से निर्धारित होता है। न्यूटन और आइन्स्टीन के गुरुत्वा-

कर्षण-सम्बन्धी विचारों के अन्तर को किसी नगर में एक बालक को गोली खेलते हुए चित्रित करके व्यक्त किया गया है। जहाँ वह लड़का खेल रहा है, वहाँ की भूमि बहुत ही ऊबड़-खाबड़ है ; टीलों और गड्ढों के कारण खुरदरी है। लेकिन वहाँ से निकटस्थ एक मकान की दसवीं मंजिल पर स्थित कार्यालय में बैठा कोई व्यक्ति धरती की इस असमता को लक्ष्य नहीं कर सकेगा। यह देख कर कि गोलियाँ भूमि के कुछ भागों में बिल्कुल नहीं जातीं और दूसरी दिशाओं में ढुलक जाती हैं, वह सोच सकता है कि कोई ऐसी शक्ति वहाँ कार्यरत है, जो गोलियों को कुछ दिशाओं में जाने से रोकती है और कुछ अन्य दिशाओं में पहुँचाती है। लेकिन एक दूसरा पर्यवेक्षक, जो उस भूमि के पास ही है, तुरन्त यह समझ जायेगा कि गोलियों का मार्ग उस क्षेत्र की ऊँचाई-निचाई से प्रभावित हो रहा है। इस उदाहरण में न्यूटन दसवें मंजिल पर बैठा पर्यवेक्षक है, जो यह कल्पना करता है कि कोई शक्ति कार्यरत है ; और आइन्स्टीन भूमि पर के पर्यवेक्षक हैं, जिनके पास ऐसी धारणा कायम करने का कोई कारण नहीं है। अतः आइन्स्टीन के गुरुत्वाकर्षण-सम्बन्धी नियम केवल दिक्-काल-अखण्डता के क्षेत्रीय तत्त्वों की चर्चा करते हैं। विशेष तौर पर, इन नियमों का एक भाग एक गुरुत्वाकर्षण-सम्पन्न वस्तु की राशि का उसके इर्द-गिर्द के क्षेत्र के ढाँचे से सम्बन्ध व्यक्त करता है। इस भाग के नियमों को आकार-सम्बन्धी नियम (Structural Laws) कहते हैं। नियमों का दूसरा भाग गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्रों में गतिशील वस्तुओं के मार्गों की व्याख्या करता है। इस भाग के नियम गति-सम्बन्धी नियम (Laws of Motion) कहलाते हैं।

लेकिन ऐसा नहीं समझा जाना चाहिये कि गुरुत्वाकर्षण-सम्बन्धी आइन्स्टीन का सिद्धान्त केवल एक गणित-विषयक योजना है ; क्योंकि इसका आधार वे गूढ़ धारणाएँ हैं, जिनका सम्बन्ध ब्रह्माण्ड से है। इन धारणाओं में से सर्वाधिक उल्लेखनीय यह है कि, ब्रह्माण्ड एक अपरिवर्तनीय और अचल ढाँचा नहीं है, जहाँ स्वतंत्र पदार्थ, स्वतंत्र दिक् और काल में स्थित हो। इसके विपरीत यह

एक आकृतिविहीन अखण्डता है, इसकी कोई निश्चित बनावट नहीं है। यह लचीला और विभिन्नतापूर्ण है एवं इसमें परिवर्तन अथवा विकृति सम्भव है। जहाँ भी पदार्थ और गति है, वहाँ अखण्डता में व्यवधान पहुँचता है। जिस तरह सागर में तैरती मछली अपने आसपास के पानी को काटती है, उसी



बुध की दीर्घवृत्तात्मक धुरी का परिभ्रमण बहुत बढ़े-चढ़े रूप में। दरअसल वह एक शताब्दी में एक वृत्तखंड का ४३ सेकण्ड भाग ही आगे बढ़ती है।

तरह एक तारा, या पुच्छल तारा, या ज्योतिर्माला उस दिक्-काल की बनावट में, जिसमें होकर ये गुजरते हैं, हेर-फेर ला देते हैं।

आइन्स्टीन के गुरुत्वाकर्षण-सम्बन्धी नियमों का प्रयोग जब नक्षत्रीय समस्याओं के समाधान में किया जाता है, तब ठीक वही परिणाम निकलते हैं, जो न्यूटन के नियमों के प्रयोग से निकलते हैं। यदि दोनों के ही परिणाम हर

दशा में एक समान निकलते, तो सम्भव था कि वैज्ञानिक न्यूटन के अधिक परिचित नियमों को ग्रहण करते और आइन्स्टीन के नियमों को ठुकरा देते। लेकिन इन नियमों से कुछ विचित्र नये तथ्यों का उद्‌घाटन हुआ है और कम-से-कम एक अति प्राचीन पहेली तो 'साधारण सापेक्षता' के द्वारा हल हो ही गयी है। यह प्राचीन पहेली बुध ग्रह के विषम संचरण के कारण उत्पन्न हुई थी। बुध ग्रह अन्य ग्रहों की तरह नियमपूर्वक अपनी दीर्घवृत्ताकार धुरी (Elliptical Orbit) पर चक्कर काटने की बजाय हर वर्ष अपने मार्ग से किंचित् हट जाता है। अन्तरिक्ष-विज्ञानवेत्ताओं ने हर तरह से इस परिवर्तन के कारण का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु न्यूटन के सिद्धान्त के अन्तर्गत वे कोई समाधान प्राप्त नहीं कर सके। आगे चल कर, आइन्स्टीन के सिद्धान्त की ही सहायता से इस समस्या को सुलझाया जा सका। सभी ग्रहों में बुध ग्रह ही सूरज के सर्वाधिक निकट है। यह एक छोटा ग्रह है और बड़ी तेजी से चक्कर काटता है। न्यूटन के सिद्धान्त के अन्तगत इन तथ्यों का उपयोग स्थान-परिवर्तन के कारण के रूप में नहीं किया जा सकता, क्योंकि बुध की गत्यात्मकता भी मूलतः दूसरे ग्रहों की तरह ही होनी चाहिए। लेकिन आइन्स्टीन के नियमों के अनुसार, सूरज के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र की सघनता और बुध की तीव्र गति में अन्तर है, जिससे बुध की धुरी की सम्पूर्ण दीर्घवृत्तात्मकता ३०,००,००० वर्षों में एक चक्कर के हिसाब से सूरज के चारों ओर एक धीमे, किन्तु निश्चित झुकाव के लिए बाध्य हो जाती है। यह आँकड़ा उस ग्रह के मार्ग के वास्तविक मापों के अनुकूल ठहरता है। इस प्रकार आइन्स्टीन का गणित, उच्च वेगवाले और शक्ति-सम्पन्न गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्रों के मामले में, न्यूटन के गणित से अधिक युक्तियुक्त है।

इस प्राचीन समस्या के समाधान के अतिरिक्त, एक और अधिक महत्व की सफलता आइन्स्टीन-द्वारा ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी एक नये तथ्य की घोषणा साबित हुई, जिसके बारे में किसी वैज्ञानिक ने कभी स्वप्न भी नहीं देखा था। यह घोषणा 'गुरुत्वाकर्षण का प्रकाश पर प्रभाव' के सम्बन्ध में थी।

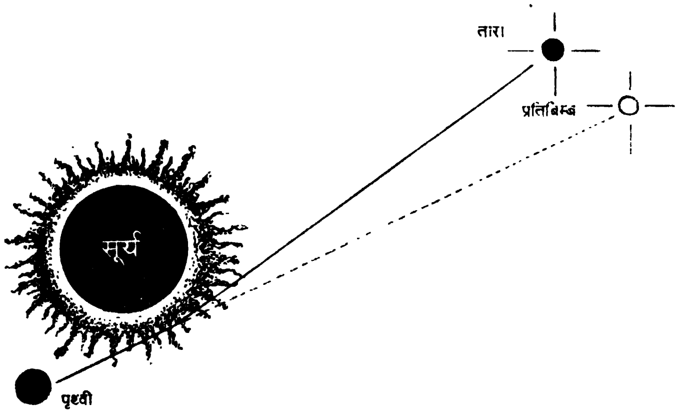
— बारह —

वह विचार-शृंखला, जिसके कारण आइन्स्टीन इस प्रभाव के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने में सफल हुए, एक अन्य काल्पनिक स्थिति से आरम्भ हुई। पहले की ही तरह, इसमें भी एक 'एलिवेटर' की कल्पना की गयी है, जो किसी गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र से मुक्त शून्य दिक् में धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा ह। इस बार किसी नक्षत्र का एक व्यक्ति आवेश में आकर 'एलिवेटर' पर एक गोली दागता है। यह गोली 'एलिवेटर' की एक प्राचीर को भेद कर बीच के शून्य स्थान को पार करती हुई दूसरी ओर की प्राचीर को पहली प्राचीर की तुलना में कुछ नीचे छेदती है। इसका कारण उस 'एलिवेटर' से बाहर स्थित गोली चलानेवाले को ज्ञात है। वह जानता है कि न्यूटन के जड़ता के नियम के अनुसार गोली एक सीध में ही गयी, लेकिन जब तक वह एक प्राचीर को पार कर दूसरी प्राचीर के पास पहुँची, तब तक सम्पूर्ण 'एलिवेटर' कुछ ऊपर उठ गया था ; फलतः गोली ने प्रथम प्राचीर की सीध में दूसरी प्राचीर को न

छूकर नीचे, फर्श के निकट, छुआ। परन्तु 'एलिवेटर' के अन्दर के पर्यवेक्षक, जिन्हें यह पता नहीं है कि ब्रह्माण्ड में वे कहाँ हैं, इस बात को दूसरे रूप में समझेंगे। इस बात से अभिज्ञ होने के कारण, कि पृथ्वी पर कोई भी दूरक्षेपक (Missile) धरती की ओर लाक्षणिक झुकाव परिलक्षित करता है, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि वे गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में हैं और जो गोली उनके 'एलिवेटर' को लगी, उसने फर्श की ओर झुक कर बिल्कुल सामान्य झुकाव की प्रवृत्ति का परिचय दिया।

एक क्षण बाद, जब कि 'एलिवेटर' आकाश में ऊपर की ओर उठ ही रहा है, अकस्मात् एक छिद्र से होकर उसकी एक प्राचीर पर एक प्रकाश-किरण प्रकट होती है और चूँकि प्रकाश का वेग तीव्र है, वह अपने प्रवेश-केन्द्र से आगे बढ़ कर, शून्य स्थल को पार कर, दूसरी प्राचीर पर एक सेकण्ड के भी अतिसूक्ष्म भाग में जा पहुँचती है। लेकिन 'एलिवेटर' इस बीच कुछ और ऊपर उठ जाता है ; अतः दूसरी प्राचीर पर वह, अपने पहले प्रवेश-बिन्दु की तुलना में, एक इंच से कुछ कम नीचे प्रकट होता है। यदि 'एलिवेटर' के अन्दर के लोगों के पास पैमाइश के अतिसूक्ष्म यंत्र होंगे, तो वे किरण के झुकाव का हिसाब लगा लेने में समर्थ होंगे। लेकिन प्रश्न यह है कि वे इसकी व्याख्या कैसे करेंगे ? वे अब भी अपने 'एलिवेटर' की गति से अपरिचित हैं और अपने को गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में स्थिर समझ रहे हैं। यदि वे न्यूटन के सिद्धान्तों की सहायता से इस गुत्थी को सुलझाने की चेष्टा करेंगे, तो गुमराह हो जायेंगे ; क्योंकि उनके प्रयत्न इसी आधार पर होंगे कि प्रकाश-किरणें सदैव एक सीध में चलती हैं। परन्तु यदि वे सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त से परिचित होंगे, तो उन्हें यह स्मरण रहेगा कि शक्ति में $m=E/c^2$ समीकरण के अनुसार राशि होती है। चूँकि प्रकाश शक्ति का एक रूप है, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि प्रकाश में भी राशि है, इसलिए वह गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र से प्रभावित होगा ; इसी कारण किरण में झुकाव आया।

इन विशुद्ध सैद्धान्तिक बातों से आइन्स्टीन ने यह निष्कर्ष निकाला कि अन्य भौतिक वस्तुओं के समान ही प्रकाश भी, एक राशि-सम्पन्न वस्तु के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र से गुजरते समय, थोड़ा झुक जाता है। उन्होंने यह सुझाव उपस्थित किया कि सूरज के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में तारे के प्रकाश-मार्ग को देखते हुए



सूरज के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में तारे के प्रकाश का स्खलन। चूँकि सूर्य-मंडल के पार्श्ववर्ती किसी तारे का प्रकाश, सूरज के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र से गुजरते समय, अन्दर की ओर, सूरज की ओर, झुका रहता है, अतः पृथ्वी पर स्थित पर्यवेक्षकों को तारे की आकृति सूरज के दूसरी ओर, बाहर की ओर, झुकी हुई-सी दिखलायी पड़ती है।

उनके इस सिद्धान्त की परीक्षा की जा सकती है। चूँकि तारे दिन में अदृश्य रहते हैं ; अतः सूरज के साथ-साथ तारों को भी आकाश में देखने का केवल एक अवसर है ; और वह सूर्यग्रहण के समय। इसलिए आइन्स्टीन ने प्रस्ताव रखा कि जिस समय सूर्य में ग्रहण लग रहा हो, उसी समय सूर्य के अंधकारपूर्ण

भाग के अत्यधिक निकट में स्थित तारों का फोटो उतार लिया जाये और उन्हीं तारों के अन्य अवसरों पर लिये गये फोटो से उसकी तुलना की जाये। इस सिद्धान्त के अनुसार, सूर्य के पार्श्ववर्ती तारों का प्रकाश सूरज के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र को पार करते समय, अन्दर की ओर, सूरज की ओर, झुका होना चाहिये। अतः उन सितारों की आकृतियाँ पृथ्वी पर के पर्यवेक्षकों को आकाश में अपने स्थानों से बाहर की ओर हटी हुई प्रतीत होंगी। आइन्स्टीन ने स्खलन की मात्रा का, जो कि परिलक्षित होनी चाहिए, हिसाब लगाया और यह भविष्य-वाणी की कि सूरज के अति निकटस्थ तारों के लिए यह झुकाव एक वृत्तखंड का १.७५ सेकण्ड होगा। चूँकि उन्होंने इस परीक्षण पर सापेक्षता के सम्पूर्ण सामान्य सिद्धान्त को निर्भर कर दिया था, अतः सम्पूर्ण संसार के वैज्ञानिक बड़ी उत्सुकता से उन परीक्षकों के परिणामों की प्रतीक्षा करने लगे, जो २९ मई, १९१९ के सूर्यग्रहण के फोटो लेने के लिए विषुवत् रेखा के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में गये थे। जब उनके द्वारा लिये गये चित्रों को विकसित किया गया और उनकी परीक्षा की गयी, तो सूरज के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में तारे के प्रकाश का स्खलन औसतन १.६४ सेकण्ड साबित हुआ। यह अंक आइन्स्टीन की भविष्यवाणी के इतना अनुकूल साबित हुआ, जितना यंत्रों की विशुद्धता के फलस्वरूप सम्भव था।

× × ×

सामान्य सापेक्षता के आधार पर आइन्स्टीन-द्वारा की गयी दूसरी भविष्य-वाणी काल से सम्बन्धित थी। यह दिखलाने के बाद, कि दिक् के तत्त्व किस तरह किसी गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र से प्रभावित होते हैं, आइन्स्टीन सादृश्यता के आधार पर किन्तु अधिक तर्कपूर्ण युक्ति से, इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कालान्तर (Time-intervals) भी गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में बदलते हैं। सूरज को भेजी जानेवाली एक घड़ी पृथ्वी की तुलना में धीमी गति से चलेगी। इसी तरह एक उज्ज्वल सौर-अणु, उसी परिमाण के पार्थिव अणु की तुलना में, किंचित् कम

प्रकाश फेंकेगा। इस मामले में तरंगदैर्घ्य का अन्तर इतना छोटा होगा कि उसे मापा नहीं जा सकता। लेकिन ब्रह्माण्ड में सूर्य से भी अधिक शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र हैं। इनमें से एक 'लुब्धक का सहचर' (Companion of Sirius) नामक एक चंचल तारे को घेरे हुए है। इस तारे का निर्माण ऐसे पदार्थ से हुआ है कि इसका एक घन इंच क्षेत्र पृथ्वी पर एक टन के बराबर उतरेगा। अपनी भारी राशि के कारण यह असाधारण वामनतारा, जो पृथ्वी से केवल तिगुना बड़ा है, अपने आसपास इतना शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र बनाये हुए है कि उससे ७० गुना बड़े तारे 'लुब्धक' की भी गति प्रभावित हो जाती है। यह क्षेत्र इतना शक्ति-सम्पन्न है कि स्वयं अपने विकिरण की आवृत्ति को भी एक मापी जा सकने-योग्य मात्रा में धीमी कर देता है। वर्णपटीय पर्य-वेक्षणों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि 'लुब्धक का सहचर' की प्रकाशीय आवृत्ति ठीक उतनी मात्रा में घट जाती है, जितनी की भविष्यवाणी आइन्स्टीन ने की थी। इस तारे के वर्णपट में तरंगदैर्घ्य के स्खलन को अन्तरिक्ष-विज्ञानवेत्ता 'आइन्स्टीन-प्रभाव' के रूप में जानते हैं। इससे सामान्य सापेक्षता की एक अतिरिक्त प्रामाणिकता व्यक्त होती है।

— तेरह —

अब तक सामान्य सापेक्षता के सिद्धान्तों ने पृथक्-पृथक् गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र के तत्त्वों पर प्रकाश डाला है। लेकिन यह ब्रह्माण्ड असंख्य भौतिक वस्तुओं से भरा है। इसमें उल्काएँ, चन्द्रमा, पुच्छल तारे, निहारिकाएँ और मेघों, ज्योतिर्मालाओं तथा परम आकाशगंगीय प्रणालियों में अपने गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्रों की परस्पर-सम्बद्ध ज्यामिति में गठित खरबों तारे हैं। स्वभावत: यहाँ यह प्रश्न उठता है कि आखिर दिक्-काल-अखण्डता की ज्यामिति क्या है, जिसमें वे गतिमान् हैं ? सीधी भाषा में, ब्रह्माण्ड का स्वरूप और आकार क्या है ? इस प्रश्न के सभी अर्वाचीन उत्तर सामान्य सापेक्षता के सिद्धान्तों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण किये जाते हैं।

आइन्स्टीन से पहले, साधारणत: ऐसा समझा जाता था कि दिक्-रूपी अगाध सागर में ब्रह्माण्ड तैरते हुए एक द्वीप के समान है। इस धारणा के कई कारण थे। अधिकांश वैज्ञानिक इस बात से सहमत थे कि ब्रह्माण्ड अनन्त

है ; क्योंकि यदि वे दिक् को किसी सीमा में आबद्ध मानते, तो उनके समक्ष तुरन्त ही यह सवाल उठ खड़ा होता—"दिक् के आगे क्या है ?" फिर भी न्यूटन के सिद्धान्त ने एक ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड की बात स्वीकार नहीं की, जिसमें पदार्थ का एकरूप वितरण हुआ हो ; क्योंकि तब अनन्त में विस्तृत पदार्थ की मात्राओं की सम्पूर्ण गुरुत्वाकर्षण-शक्ति भी अनन्त होती और अनन्त प्रकाश में अन्तरिक्ष जल कर भस्म हो जाता। साथ ही, मनुष्य की दुर्बल आँखों को ऐसा प्रतीत होता कि आकाशगंगा के आगे दिक् के प्रदीप संकीर्णतर होकर शनैः-शनैः सुदूर केन्द्रों में छितराते जाते हैं, मानो वे अनन्त शून्य की सीमाओं पर एकान्त में स्थित प्रकाश-स्तम्भ हों। लेकिन ब्रह्माण्ड को द्वीप-स्वरूप मानने में कठिनाइयाँ भी थीं। ब्रह्माण्ड में जितना पदार्थ था, वह दिक् की अनन्तता की दृष्टि से इतना थोड़ा था कि ज्योतिर्मालाओं की गतिविधियों को निर्देशित करनेवाले गत्यात्मक नियम अवश्य ही उसे बादल के टुकड़ों की तरह छितरा देते और ब्रह्माण्ड सम्पूर्णतः खाली हो जाता।

आइन्स्टीन को विनाश और लुप्तता का यह चित्र बहुत ही असन्तोषजनक प्रतीत हुआ। उन्होंने अनुमान लगाया कि मूल कठिनाई मनुष्य की स्वाभाविक, किन्तु इस भ्रान्त धारणा के कारण उत्पन्न हुई है कि उसके पार्थिव अनुभवों के अनुसार ही ब्रह्माण्ड की ज्यामिति भी होगी। उदाहरणस्वरूप, हम विश्वासपूर्वक यह धारणा बनाते हैं कि प्रकाश की दो समानान्तर किरणें दिक् में लगातार आगे बढ़ते जाने पर भी आपस में कभी नहीं मिलेंगी; क्योंकि यूक्लिड की ज्यामिति बतलाती है कि दो समानान्तर रेखाएँ आपस में कभी नहीं मिलतीं। हम इस बात को भी निश्चित ही मानते हैं कि बाह्य दिक् में, एक टेनिस-कोर्ट की भाँति, एक सीधी रेखा दो बिन्दुओं के बीच की अल्पतम दूरी होती है। यद्यपि यूक्लिड ने वस्तुतः कभी इसे प्रमाणित नहीं किया कि एक सीधी रेखा दो बिन्दुओं के बीच की अल्पतम दूरी होती है, तथापि उसने व्याख्या यही प्रस्तुत की कि एक सीधी रेखा दो बिन्दुओं के बीच की अल्पतम दूरी है।

अतएव आइन्स्टीन ने प्रश्न किया कि तब क्या यह सम्भव नहीं है कि मनुष्य यूक्लिड की ज्यामिति के आधार पर ब्रह्माण्ड का चित्रण करके स्वयं अपनी सीमित अनुभूतियों से धोखा खाता है? एक समय था, जब मनुष्य पृथ्वी को चिपटी मानता था। अब वह स्वीकार करता है कि पृथ्वी गोल है और यह जानता है कि पृथ्वी की सतह पर दो बिन्दुओं, यथा न्यूयार्क और लंदन, की अल्पतम दूरी अतलांतिक से होकर एक सीधी रेखा की तरह का मार्ग नहीं, बल्कि एक 'बड़ा वृत्त' है, जो उत्तर की ओर मुड़ कर नोवो स्कोटिया, न्यू फाउंडलैंड और आइसलैंड होकर गुजरता है। जहाँ तक पृथ्वी की सतह का सम्बन्ध है, यूक्लिड की ज्यामिति उपयुक्त नहीं है। पृथ्वी की सतह पर, यदि विषुवत् रेखा के दो केन्द्रों से उत्तरी ध्रुव को तीसरा केन्द्र मान कर एक वृहताकार त्रिभुज बनाया जाये, तो उससे यूक्लिड के इस सिद्धान्त की पुष्टि नहीं होगी कि एक त्रिभुज के दो अंत:कोणों का योगफल दो समकोणों या १८० अंश के बराबर होता है। इन दोनों कोणों का योगफल १८० अंश से अधिक होगा, जैसा कि ग्लोब पर एक नजर डालने से सहज ही स्पष्ट हो जायेगा। और, यदि कोई पृथ्वी की सतह पर एक बड़ा वृत्त खींचे, तो वह पायेगा कि उसके व्यास और परिधि के बीच का अनुपात मान्य मूल्य pi से कम है। यूक्लिड से मेल न खाने का मूल कारण पृथ्वी का झुकाव है। यद्यपि आज कोई भी व्यक्ति इस बात में सन्देह नहीं करता कि पृथ्वी झुकी हुई है, तथापि इसका ज्ञान मनुष्य ने पृथ्वी से बाहर जाकर और तब दृष्टिपात करके प्राप्त नहीं किया है। पृथ्वी के झुकाव का हिसाब सहज ही दृश्य तत्त्वों को उचित गणित-विषयक स्वरूप प्रदान करके बड़े मजे में लगाया जा सकता है। इसी तरह अन्तरिक्ष-तत्त्वों और अनुमान के मेल से आइन्स्टीन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ब्रह्माण्ड न तो अनन्त है और न यूक्लिड की धारणा के अनुसार है, जैसा कि अधिकांश वैज्ञानिक समझते थे; बल्कि यह कुछ ऐसे ढंग का है, जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की गयी।

यह पहले ही दिखाया जा चुका है कि गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र में यूक्लिड की ज्यामिति उपयुक्त नहीं ठहरती। किसी गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र से गुजरते समय प्रकाश-किरणें समानान्तर रेखाओं के रूप में नहीं चलतीं, क्योंकि इस क्षेत्र की ज्यामिति ही इस ढंग की होती है कि इसमें सीधी रेखाएँ सम्भव नहीं हो सकतीं।



प्रकाश जो अल्पतम मार्ग ग्रहण कर सकता है, वह एक झुकाव या बड़ा वृत्त ही हो सकता है, जो कि क्षेत्र की ज्यामितीय बनावट से निश्चित होता है। चूँकि किसी गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र की बनावट गुरुत्वाकर्षणवाली वस्तु– तारा, चन्द्रमा या ग्रह– की राशि और वेग से निश्चित होती है; अतः यह तय है कि सम्पूर्ण रूप में ब्रह्माण्ड की बनावट अवश्य ही उसके अन्दर निहित पदार्थों के योग के अनुसार होगी। ब्रह्माण्ड के प्रत्येक पदार्थीय जमाव के कारण दिक्-काल-अखण्डता में एक तदनुरूप विकृति उत्पन्न होती है। अन्तरिक्ष का प्रत्येक

पदार्थ --प्रत्येक ज्योतिर्माला-- दिक्-काल में ठीक उसी तरह का स्थानीय व्यवधान उपस्थित करता है, जिस तरह द्वीपों के पास समुद्र में भँवर पड़ जाते हैं। जितना बड़ा पदार्थीय जमाव होगा, उतना ही अधिक दिक्-काल का झुकाव भी होगा। और, ऐसे सारे प्रभावों का परिणाम सम्पूर्ण दिक्-काल-अखण्डता का सम्पूर्णतः झुकाव होगा। पृथ्वी की अगणित पदार्थीय मात्राओं-द्वारा उत्पन्न सामूहिक विकृतियाँ अखण्डता को पीछे की ओर झुकने पर तथा एक महान् और बंद ब्रह्माण्डीय वक्रता का रूप धारण करने को बाध्य कर देती हैं।

अतएव आइन्स्टीन के विचारानुसार ब्रह्माण्ड यूक्लिड के सिद्धान्त के विरुद्ध होने के साथ-साथ परिमित है। एक पार्थिव मनुष्य को एक प्रकाश-किरण ठीक उसी तरह एक सीध में अनन्त तक की यात्रा करती मालूम पड़ सकती है, जिस तरह पृथ्वी पर रेंगनेवाले किसी कीटाणु को आजीवन आगे बढ़ते रहने पर भी यही मालूम पड़ेगा कि पृथ्वी चिपटी और अनन्त है। लेकिन पार्थिव कीटाणु की पृथ्वी-सम्बन्धी धारणा के अनुसार ही, मनुष्य की यह धारणा, कि स्वरूप में पृथ्वी यूक्लिड के सिद्धान्त के अनुकूल है, उसकी इन्द्रियों के सीमित होने का परिणाम है। आइन्स्टीन के ब्रह्माण्ड में सीधी रेखाएँ नहीं, बल्कि केवल बड़े-बड़े वृत्त हैं। दिक् परिमित होने पर भी असीम है। एक गणितज्ञ इसके ज्यामितीय स्वरूप को एक मंडल की सतह के चतुर्विस्तारीय सादृश्य के रूप में ग्रहण करेगा। स्वर्गीय ब्रिटिश भौतिक विज्ञानवेत्ता सर जेम्स जीन्स के सीधे-सादे शब्दों में इसे यों कहा जा सकता है :--

"सापेक्षता के सिद्धान्त-द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत नये ब्रह्माण्ड की साधारण और सुपरिचित वस्तुओं की दृष्टि से, एक साबुन का बुलबुला, जिसकी सतह पर सिलवटें हों, सर्वाधिक उपयुक्त प्रतिनिधि प्रतीत होता है। ब्रह्माण्ड साबुन के बुलबुले का अन्तःभाग नहीं, वरन् उसका सतहवाला भाग है और हमें यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि जब कि साबुन के बुलबुले में केवल दो विस्तार

होते हैं, ब्रह्माण्डीय बुलबुले के चार विस्तार हैं—तीन तो दिक् के और एक काल का। और, वह मूल तत्त्व, जिससे इस बुलबुले का जन्म होता है, शून्य दिक् है, जो कि शून्य काल से संयुक्त है।"

आधुनिक विज्ञान के अधिकांश सिद्धान्तों की तरह ही आइन्स्टीन का असीम मंडलाकार ब्रह्माण्ड एक 'फोटोन' या एक विद्युत्-अणु से अधिक स्पष्ट रूप में नहीं देखा जा सकता। लेकिन 'फोटोन' या विद्युत्-अणु की भाँति इसकी सामग्रियों को गणित के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। आधुनिक अन्तरिक्ष-विज्ञान के सर्वोत्तम निष्कर्षों को लेकर और उनका आइन्स्टीन के क्षेत्रीय समीकरणों में प्रयोग करके, ब्रह्माण्ड के आकार का हिसाब लगाया जा सकता है। इसके अर्द्धव्यास (Radius) का अनुमान लगाने के लिए यह आवश्यक है कि पहले इसकी वक्रता का निश्चय कर लिया जाये। जैसा कि आइन्स्टीन ने बतलाया, चूँकि दिक् की ज्यामिति या वक्रता उसके अन्दर निहित पदार्थों से निश्चित होती है, अतः ब्रह्माण्डीय समस्या का समाधान ब्रह्माण्ड के पदार्थ की औसत सघनता का निश्चय होने से ही सम्भव होगा।

सौभाग्यवश यह आँकड़ा हमें उपलब्ध ह। माउण्ट विलसन वेधशाला के अन्तरिक्ष-विज्ञानवेत्ता एडविन हब्ल ने वर्षों तक अन्तरिक्ष के कुछ आदर्श क्षेत्रों का अध्ययन किया और बड़े परिश्रम से उनके अन्दर निहित पदार्थों का हिसाब लगाया। अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में औसत प्रत्येक घन सेंटीमीटर दिक् में .००००००००००००००००००००००००००००००१ ग्राम पदार्थ है। आइन्स्टीन के क्षेत्रीय समीकरणों में प्रयुक्त होने पर यह संख्या ब्रह्माण्ड की वक्रता के मामले में काफी उपयोगी साबित होती है और आगे चल कर यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्माण्ड का अर्द्धव्यास ३५० अरब प्रकाश-वर्ष अथवा २,१०,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० मील है। आइन्स्टीन का ब्रह्माण्ड यद्यपि अपरिमित नहीं है, तथापि इतना

विशाल है कि उसमें अरबों ज्योतिर्मालाएँ– प्रत्येक ज्योतिर्माला में करोड़ों ज्वलंत तारे, अपरिमेय गैस, लोहे और पत्थर की शीत-प्रणालियाँ और ब्रह्माण्डीय रजकण हैं– समायी हुई हैं। सूरज की एक किरण यदि प्रति सेकण्ड, १,८६,००० मील की गति से ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करे, तो उसे फिर अपने उसी स्थान पर पहुँचने में २० अरब सांसारिक वर्ष से कुछ अधिक ही समय लग जायेगा।

— चौदह —

जिस समय आइन्स्टीन ने अपने विश्व-विज्ञान का उद्घाटन किया, उस समय तक वे एक अद्भुत अन्तरिक्ष-सम्बन्धी तथ्य से अनभिज्ञ थे। उसके कई वर्षों के बाद यह तथ्य प्रकाश में आया। उन्होंने यह कल्पना की थी कि गैस में अणुओं की निरुद्देश्य गतिविधियों की तरह ही, तारों और ज्योतिर्मालाओं की गतिविधियाँ भी निरुद्देश्य हैं। चूँकि इस बात का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं था कि उनके विचरण में किसी तरह का ऐक्य है, अतः उन्होंने उनकी सम्पूर्णतः उपेक्षा की थी और ब्रह्माण्ड को स्थिर मान लिया था। लेकिन अन्तरिक्ष-विज्ञानवेत्ताओं को इस बात के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे कि सूक्ष्मवीक्षण-यंत्र से जहाँ तक दृष्टि पहुँचती है, उसकी अन्तिम सीमाओं पर बाह्य ज्योतिर्मालाएँ एक व्यवस्थित ढंग से विचरण करती हैं। ये सभी बाह्यावस्थित ज्योतिर्मालाएँ या 'द्वीपीय ब्रह्माण्ड' हमारी सौर-प्रणाली से और स्वयं एक-दूसरे से भी दूर होती जा रही हैं। दूरवर्ती ज्योतिर्मालाओं— उनमें अत्यधिक

दूरस्थ ५० करोड़ प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है—की यह सुगठित उड़ान निकटतर गुरुत्वाकर्षण-प्रणालियों की मंथर गति से एक सर्वथा भिन्न चीज है। इस तरह की एक नियमबद्ध गतिविधि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की वक्रता को प्रभावित करेगी ही।

अतएव यह ब्रह्माण्ड स्थिर नहीं है। यह बहुत-कुछ एक साबुन के बुलबुले या गुब्बारे की तरह फैल रहा है। पर यह उपमा पूर्णतः उपयुक्त नहीं है, क्योंकि यदि हम ब्रह्माण्ड को एक तरह का धब्बेदार गुब्बारा मान लेंगे—धब्बे के रूप में पदार्थ को रखें—तो गुब्बारे के बढ़ने के साथ-साथ धब्बे के भी बढ़ने की आशा की जायेगी। लेकिन ऐसा सम्भव नहीं होगा। जिस तरह 'आश्चर्यों के देश' में 'एलिस' अपने आसपास के वातावरण के अकस्मात् फैलने या सिकुड़ने से अनभिज्ञ रहती थी, ठीक उसी तरह हम भौतिक विस्तार को अनुभव नहीं कर पायेंगे। अतएव, जैसा कि 'कैलिफोर्निया इन्स्टीटयूट आफ टेक्नोलाजी' के विश्व-विज्ञानवेत्ता एच. पी. राबर्टसन ने इंगित किया है, ब्रह्माण्ड को एक धब्बेदार गुब्बारे के रूप में देखते समय हमें अवश्य ही ऐसा समझना चाहिये कि वे धब्बे सतह से सिले हुए और न फैलने-योग्य पैबन्द-सरीखे हैं। जिस तरह पैबन्दों के बीच का गुब्बारे का क्षेत्र फैल जाता है, उसी तरह पदार्थीय वस्तुएँ तो अपना विस्तार स्थिर रखती हैं और उनके बीच का दिक् विस्तृत होता है।

इस असाधारण तथ्य से विश्व-विज्ञान को काफी मदद मिली है। यदि वर्णपटीय व्याख्या, कि बाह्य ज्योतिर्मालाएँ अवरुद्ध हैं (जैसा कि अधिकांश खगोलशास्त्रियों का विश्वास है), सही है, तो जिन गतियों से वे शून्य में विलीन होती जा रही हैं, वे प्रायः अविश्वसनीय हैं। उनकी गति दूरी के साथ ही बढ़ती प्रतीत होती है। जब कि निकटवर्ती ज्योतिर्मालाएँ—प्रायः दस लाख प्रकाश-वर्ष दूरस्थ—केवल १०० मील प्रति सेकण्ड की गति से चल रही हैं, २५ करोड़ प्रकाश-वर्ष दूरस्थ ज्योतिर्मालाओं की गति अद्भुत रूप से २५ हजार मील प्रति सेकण्ड है, यानी प्रकाश के वेग का सातवाँ अंश। चूंकि ये सभी सुदूरस्थ ज्योतिर्मालाएँ, बिना किसी अपवाद के, हमसे तथा एक-दूसरे से दूर होती जा

रही हैं, अतः सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे किसी समय एक साथ एक राशि के रूप में रही होंगी। और, यदि दिक् की ज्यामिति उसमें निहित पदार्थ से निर्धारित होती ह, तो अवश्य ही उस पूर्व ज्योतिर्माला-काल में ब्रह्माण्ड का स्वरूप एक बुरी तरह भरे हुए पात्र की तरह का रहा होगा— उसकी वक्रता बहुत अधिक रही होगी और उसमें पदार्थ अद्भुत रूप से सघन अवस्था में रहे होंगे। अवरुद्ध ज्योतिर्मालाओं के वेगों पर आधारित आँकड़ों से प्रकट होता है कि प्रायः २० अरब वर्ष पहले इस सिकुड़े हुए ब्रह्माण्ड के केन्द्र से वे अलग हुई होंगी और अपनी पृथक्-पृथक यात्रा पर चली होंगी।

× × ×

इस विस्तारमय ब्रह्माण्ड की पहेली की व्याख्या के लिए खगोल-शास्त्रियों और विश्व-विज्ञानवेत्ताओं ने कई सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। बेल्जियम के विश्व-विज्ञानवेत्ता ऐबे लिमेत्रे-द्वारा प्रस्तुत एक सिद्धान्त में कहा गया है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक विशाल मौलिक अणु से हुई। इस अणु के विस्फोट से इसके अन्दर निहित सारे पदार्थ छितरा गये और परिणामस्वरूप ब्रह्माण्ड को वह रूप प्राप्त हुआ, जो हम आज देखते हैं। एक अन्य सादृश्यमूलक सिद्धान्त को अभी हाल में जार्ज वाशिंग्टन-विश्वविद्यालय के डा. जार्ज गैमो प्रकाश में ले आये हैं, जिसमें विस्तार से बतलाया गया है कि किस तरह विस्तृत होने से पहले ब्रह्माण्ड के सघन और प्रज्वलित केन्द्र में सारे पदार्थ स्थित रहे होंगे। आरम्भ में, डा. गैमो कहते हैं, ब्रह्माण्ड का केन्द्र-स्थल समानजातीय एवं मौलिक वाष्प का, जो कल्पनातीत तापमान में उबलता था, भांडार था। अब तो वह तापमान तारों के अन्तःभाग में भी शेष नहीं रह गया है। (सूरज का, जो एक औसत तारा है, तापमान सतह पर ५,५०० डिग्री सेंटीग्रेड तथा अंतःभाग में ४,००,००,००० डिग्री सेंटीग्रेड है।) उस ताप में अणु-परमाणु-जैसे तत्त्व नहीं, बल्कि 'न्यूट्रान' (Neutrons) थे, जो कि बड़ी अस्त-व्यस्त अवस्था में रहते

थे। जब ब्रह्माण्डीय राशि फैलने लगी, तो तापमान गिरने लगा और जब इसमें १० अरब डिग्री की कमी हो गयी, तो 'न्यूट्रान' जम कर ठोस रूप धारण करने लगे; फिर विद्युत्-अणु प्रकट हुए, जो अणुओं से सम्बद्ध हो गये और इस प्रकार परमाणु का निर्माण हुआ। इस तरह ब्रह्माण्ड के सभी तत्त्व ब्रह्माण्डीय प्रभात के गम्भीर क्षणों में दिक् के अन्तर्गत प्रकट हुए और बाद के २० अरब वर्षों के विस्तार-काल में उनके कार्य आदि निश्चित हुए।

कुछ वर्ष पूर्व 'कैलिफोर्निया इन्स्टीटच्यूट आफ टेक्नोलाजी' के डा. आर. सी. टोलमैन ने विस्तारमय ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया था, उसमें कहा गया था कि ब्रह्माण्ड़ीय विस्तार सम्भवत: एक अस्थायी अवस्था है और कुछ काल बाद, हो सकता है कि, फिर सिकुड़न की प्रक्रिया आरम्भ हो जाये। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड को एक फूलनेवाला गुब्बारा माना गया है, जिसमें विस्तार और संकोचन का क्रम अनन्तता के माध्यम से क्रमशः चलता रहता है। ये परिवर्तन ब्रह्माण्ड में पदार्थों की मात्रा में होनेवाले परिवर्तन से प्रभावित होते हैं। आइन्स्टीन ने भी कहा है कि ब्रह्माण्ड की वक्रता उसके अन्दर निहित पदार्थों पर निर्भर करती है। इस सिद्धान्त के साथ एक कठिनाई इसके आधार की यह कल्पना है कि ब्रह्माण्ड में कहीं पदार्थ का निर्माण हो रहा है। यद्यपि यह सत्य है कि ब्रह्माण्ड के पदार्थ का परिमाण निरन्तर बदलता रहता है, किन्तु यह परिवर्तन केवल एक दिशा में— क्षय की दिशा में— होता प्रतीत होता है। प्रकृति के दृश्य अथवा अदृश्य, सभी तत्त्व— चाहे वे परमाणु में हों या बाह्य आकाश में— यह व्यक्त करते हैं कि ब्रह्माण्ड का सार-तत्त्व और शक्ति, अथाह शून्य में वाष्प की भाँति, अव्यवस्थित ढंग से छितरायी जा रही है। सूरज का ताप धीरे-धीरे, परन्तु निश्चित रूप से, घटता जा रहा है; तारे बुझने वाले अंगारे-से बनते जा रहे हैं और सभी जगह का ताप ठंडक में परिवर्तित होता जा रहा है, पदार्थ प्रकाश-किरण बनता जा रहा है और शक्ति शून्य दिक् में खोती जा रही है।

इस प्रकार, ब्रह्माण्ड अन्ततः 'ताप-मृत्यु' की ओर या पारिभाषिक भाषा में, 'उष्णता का अधिकतम क्षयमान' (Maximum Entropy) की ओर बढ़ रहा है। कुछ अरब वर्षों के बाद ब्रह्माण्ड की सभी वर्तमान कार्य-प्रणालियाँ रुक जायेंगी। सारे दिक् का तापमान एक समान हो जायेगा। शक्ति का उपयोग असम्भव हो जायेगा; क्योंकि तब वह सारे ब्रह्माण्ड में समान रूप से वितरित हो जायेगी। न प्रकाश का अस्तित्व रहेगा, न जीवन का और न उष्णता का—केवल नित्य और अखण्डनीय स्थिरता रह जायेगी। स्वयं काल भी समाप्त हो जायेगा, क्योंकि उष्णता का क्षयमान ही काल को निर्देशित करता है और वही आकस्मिकता का भी मापदण्ड है। जब संसार की सभी प्रणालियाँ और व्यवस्था लुप्त हो जायेंगी, जब आकस्मिकता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जायेगी, जब उष्णता का क्षयमान बढ़ाया नहीं जा सकेगा, जब कार्य-कारण का कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा—संक्षेप में, जब ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जायेगा, तो काल के लिए कोई निर्देशक तत्त्व नहीं रह जायेगा ; अतः काल भी समाप्त हो जायेगा। और, इस परिणाम से बचने का कोई उपाय भी नहीं है। तापगति-विज्ञान (Thermo-dynamics) का द्वितीय नियम, जो कि वस्तुतः विज्ञान की प्रगति के बावजूद विशिष्ट भौतिक विज्ञान का एकमात्र अछूता स्तम्भ-स्वरूप है, बतलाता है कि प्रकृति की मौलिक प्रणालियाँ अपरिवर्तनीय हैं। प्रकृति एक ही दिशा में बढ़ती है।

लेकिन कुछ ऐसे समकालीन सिद्धान्तवादी भी हैं, जो कहते हैं कि किसी तरह कहीं पर, मनुष्य के ज्ञान के परे, ब्रह्माण्ड अपना पुनर्निर्माण कर रहा हो, ऐसा भी सम्भव है। आइन्स्टीन के राशि और शक्ति की समानता-सम्बन्धी सिद्धान्त के प्रकाश में, ऐसी कल्पना की जा सकती है कि दिक् में विस्तृत विकिरण एक बार फिर पदार्थ के कणों— विद्युत्-अणुओं, परमाणुओं और अणुओं— का निर्माण कर रहे हैं, जो कि आगे चल कर अपेक्षाकृत बड़ी इकाइयों में परिणत हो जायेंगे। इसके बाद सम्भव है कि अपनी ही गुरुत्वाकर्षण-शक्ति से वे इकाइयाँ

निहारिकाओं, तारों और अन्त में, आकाशगंगीय प्रणालियों का रूप ग्रहण करके छितरा जायें और, इसी तरह ब्रह्माण्ड की जीवन-लीला अनन्तकाल तक चलती रहे। प्रयोगशालाओं में किये गये परीक्षणों से यह वस्तुतः प्रकट हो चुका है कि उच्च शक्ति के विकिरणवाले फोटोन– जैसे, 'गामा' किरणें– कुछ परिस्थितियों में पदार्थ के साथ मिल कर परस्पर-क्रिया-द्वारा विद्युत्अणुओं और योगकणों (Positrons) को जन्म दे सकते हैं। अभी हाल में खगोल-शास्त्री भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दिक् में तैरनेवाले सूक्ष्म तत्त्वों के परमाणु– उद्जन, हेलियम, आक्सीजन, नाइट्रोजन और कार्बन– धीरे-धीरे अणुओं, सूक्ष्मदर्शी यंत्रों से देखे जा सकनेवाले रजकणों एवं गैस में परिणत हो सकते हैं। और, सबसे निकट अतीत में, १९४८ ईसवी में, प्रकाशित 'रजकण-मेघ-सम्बन्धी धारणा' में हार्वर्ड के डा. फ्रेड एल. ह्विप्ले ने बतलाया है कि किस तरह ब्रह्माण्ड में सभी दृश्य पदार्थों के बराबर मात्रा में, अन्तःनक्षत्रीय दिक् में विचरण कर रहे ब्रह्माण्डीय रजकण १५ अरब वर्षों में जम कर तारों का रूप ग्रहण कर लेंगे। ह्विप्ले के कथनानुसार, ये सूक्ष्म रजकण, जिनका व्यास मुश्किल से एक इंच का पचास हजारवाँ हिस्सा होगा, तारे के प्रकाश के मंद चाप से ही एक साथ उड़ने लगते हैं– ठीक उसी तरह, जिस तरह एक पुच्छल तारे की सुन्दर पूंछ सौर-'फोटोनो' का दबाव पाकर सूरज के मार्ग से हट जाती है। कणों के चिपकने से एक समूह का निर्माण होता है, फिर एक लघुमेघ बनता है और तब मेघ अस्तित्व में आता है। जब मेघ बड़ा रूप धारण करेगा (यानी जब उसका व्यास ६ महाशंख मील से अधिक हो जायेगा), तब उसकी राशि और सघनता प्राकृतिक प्रणालियों की एक नयी स्थिति को कार्यरत करने में समर्थ हो जायेगी। गुरुत्वाकर्षण मेघ को संकोचन के लिए बाध्य करेगा और संकोचन उसके आन्तरिक दबाव और तापमान को बढ़ा देगा। अन्त में, अपने विनाश की अन्तिम श्वेत-तप्त स्थिति में वह एक तारे की तरह विकिरण आरम्भ कर देगा। सिद्धान्त बतलाता है कि हमारी सौर-

प्रणाली, विशेष परिस्थितियों में, इसी प्रणाली से प्रकट हुई हो, ऐसा सम्भव है; क्योंकि सूरज ही वह सम्बन्धित तारा है और विभिन्न ग्रह, मुख्य मेघ के अन्तर्गत अवस्थित अनुपूरक लघुमेघों के घनीभूत छोटे ठंडे उप-उत्पादन हैं।

इस तरह की घटनाओं की सम्भावना की पूर्वकल्पना करने पर अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड स्वतः स्थिर एवं स्फुरण-सम्पन्न है और निर्माण-विनाश, प्रकाश-अन्धकार, व्यवस्था-अव्यवस्था, ताप-ठंढक एवं विस्तार-संकोचन का क्रम काल के अनन्त कल्पों में चलता रहता है। फिर भी इस सिद्धान्त को अब तक बड़े पैमाने पर स्वीकार नहीं किया जाता, क्योंकि इसके समर्थन में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। यद्यपि सभी विस्तारों और घनात्मक परिमाणों के रजकण-मेघ अन्तर्नक्षत्रीय दिक् की अनन्तता में फैले दिखाई पड़ सकते हैं, तथापि मनुष्य की संकीर्ण सांसारिक दृष्टि की मदद से कोई भी यह नहीं कह सकता कि वे तारे के सूक्ष्म रूप (Proto-star) हैं। वह तो इतना ही विश्वासपूर्वक कह सकता है कि पृथ्वी के चारों ओर फैले नीले वातावरण में सफेद मेघों का छा जाना आँधी आने की पूर्वसूचना है या फिर वे हवा के कारण आकर इकट्ठे हो गये हैं और कुछ देर बाद बिखर जायेंगे। लेकिन हमारी सौर-प्रणाली, या किसी तारे, या प्राकृतिक प्रणाली के किसी सम्बद्ध भाग के उद्भव-सम्बन्धी मतभेदों के अलावा इस सुझाव को मानने में कि, ब्रह्माण्ड अब भी अपने सम्पूर्ण रूप में निर्माण-कार्य में संलग्न है, कई सैद्धान्तिक और व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। इस निर्जीव प्रकृति की किसी भी चीज को त्रुटिरहित रूप से रचनात्मक प्रणाली नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए, एक समय ऐसा सोचा गया था कि रहस्यपूर्ण ब्रह्माण्डीय किरणें, जो निरन्तर बाह्य दिक् से पृथ्वी पर प्रहार करती रहती हैं, सम्भवतः किसी परमाणविक रचनात्मक प्रणाली के उप-उत्पादन हैं; लेकिन इससे अधिक समर्थन इसके इस विरोधी विचार को प्राप्त हुआ कि वे परमाणविक विनाश के उप-उत्पादन हैं। वस्तुतः प्रत्येक वस्तु— चाहे वह प्रकृति में दृश्य हो

या सिद्धान्त-द्वारा सिद्ध हो— यही प्रकट करती है कि ब्रह्माण्ड अबाध रूप से अन्तिम अन्धकार और विनाश के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है।

इस विचार का एक महत्वपूर्ण दार्शनिक उपसिद्धान्त भी है। यदि ब्रह्माण्ड विनाश की ओर अग्रसर है और प्राकृतिक प्रणालियाँ केवल एक दिशा में बढ़ी जा रही हैं, तो इससे यह निष्कर्ष निश्चित रूप से निकलता है कि हर चीज का कहीं आरम्भ भी हुआ था— किसी तरह, किसी समय, ये ब्रह्माण्डीय प्रणालियाँ आरम्भ हुई थीं, नक्षत्रीय अग्नि प्रज्वलित हुई थी और ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण विस्तृत लीला अस्तित्व में आयी थी। साथ ही, वैज्ञानिक निष्कर्षों को आन्तरिक और बाह्य सीमाओं पर जो भी सूत्र प्राप्त हुए हैं, वे यह व्यक्त करते हैं कि ब्रह्माण्ड का निर्माण किसी निश्चित काल में हुआ होगा। जिस अभिन्न हिसाब से यूरेनियम अपनी परमाणु-केन्द्रीय शक्ति को बिखेरता है (और चूँकि उसके निर्माण की किसी प्राकृतिक प्रणाली का पता नहीं चलता), उससे प्रकट होता है कि इस पृथ्वी पर जितना भी यूरेनियम है, सबका निर्माण एक निश्चित काल में हुआ होगा। भू-विज्ञानवेत्ताओं की गणना के अनुसार यह काल करीब २० अरब वर्ष पूर्व रहा होगा। तारों के आन्तरिक भागों में दुर्धर्ष रूप से चलनेवाली ताप-केन्द्रीय-प्रणालियाँ जिस तीव्रता से पदार्थ को प्रकाश-किरण में परिणत करती हैं, उससे अन्तरिक्ष-विज्ञानवेत्ता नक्षत्रीय जीवन का विश्वास-पूर्वक हिसाब लगाने में समर्थ हैं। उनके हिसाब से अधिकांश दृश्य तारों की औसत आयु २० अरब वर्ष है। इस प्रकार, भू-विज्ञानवेत्ताओं और अन्तरिक्ष-विज्ञानवेत्ताओं के हिसाब ब्रह्माण्डवेत्ताओं के हिसाब के बहुत अनुकूल ठहरते हैं, क्योंकि दौड़ती हुई ज्योतिर्मालाओं के प्रत्यक्ष वेग के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ब्रह्माण्ड का विस्तार-कार्य बीस अरब वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ होगा। विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में भी कुछ ऐसे लक्षण उपलब्ध हैं, जो इसी तथ्य को प्रकट करते हैं। अतएव ब्रह्माण्ड के अन्ततः विनाश की ओर इंगित

करनेवाले सारे प्रमाण काल पर आधारित उसके आरम्भ को भी निश्चयपूर्वक व्यक्त करते हैं।

यदि कोई एक अमर स्फुरणशील ब्रह्माण्ड (जिसमें सूरज, पृथ्वी और विशालकाय लाल तारे अपेक्षाकृत नवागंतुक हैं) की कल्पना से सहमत हो जाये, तो भी आरम्भिक उद्भव की समस्या शेष रह ही जाती है। इससे केवल उद्भव-काल असीम अतीत के गर्भ में चला जाता है, क्योंकि वैज्ञानिकों ने ज्योतिर्मालाओं, तारों, तारा-सम्बन्धी रजकणों, परमाणुओं और यहाँ तक कि परमाणुओं में निहित तत्त्वों के बारे में गणित की सहायता से जो भी लेखा-जोखा तैयार किया है, उसके हर सिद्धान्त का आधार यह धारणा रही है कि कोई चीज पहले से विद्यमान अवश्य थी– चाहे वह उन्मुक्त 'नाइट्रोन' हो, या शक्ति की राशि, या केवल अगाध 'ब्रह्माण्डीय तत्त्व', जिससे आगे चल कर ब्रह्माण्ड ने यह रूप प्राप्त किया।

— पन्द्रह —

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के प्रश्न पर अधिकांश विश्व-विज्ञानवेत्ता मौन हैं और इसे हल करने का भार उन्होंने दार्शनिकों और अध्यात्मवादियों पर छोड़ दिया है। फिर भी, आधुनिक वैज्ञानिकों में से केवल अतिव्यवहारवादी ही प्राकृतिक यथार्थता के रहस्य की ओर से मुँह मोड़ते हैं। आइन्स्टीन ने, जिनके विज्ञान-दर्शन की कभी-कभी 'यथार्थवादी' के रूप में आलोचना की गयी है, एक बार कहा–

"जो सर्वाधिक सुन्दर और गम्भीर भावना हम अनुभव कर सकते हैं, वह रहस्य की अनुभूति है। यह सभी यथार्थ विज्ञानों का मूल है। वह व्यक्ति, जो इस भावना से अनभिज्ञ है और जो इसके कारण विस्मय और कौतूहल में नहीं पड़ता, मृतक के समान है। वह चीज वस्तुतः क्या है, जिसकी थाह हम नहीं पाते और जो अपने में उच्चतम बुद्धिमत्ता और परम सुन्दरता को, जिसे हमारी

इन्द्रियाँ उसके मूल स्वरूप में ही ग्रहण कर सकती हैं, समाहित किये हुए है— यह ज्ञान, यह अनुभूति, ही सच्ची धार्मिकता का केन्द्रबिन्दु है।"

एक दूसरे अवसर पर उन्होंने कहा– "ब्रह्माण्ड-धर्म-सम्बन्धी अनुभूति वैज्ञानिक अनुसन्धान का सबसे सबल और आदर्श स्रोत है।" अधिकांश वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड के रहस्यों, उसकी महती शक्तियों, उसके उद्भव और उसकी ज्ञान-शक्ति और एकरूपता पर विचार करते समय 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग करने में हिचकते हैं। लेकिन आइन्स्टीन में, जिन्हें नास्तिक बतलाया गया ह, इस तरह की कोई भावना नहीं थी। वे कहते हैं–"मेरा धर्म इस महान् अनन्त शक्ति के प्रति विनम्र श्रद्धा है, जो अपने को उन छोटे-छोटे तत्त्वों में व्यक्त करती है, जिन्हें हम अपने दुर्बल मानस से ग्रहण करने में समर्थ हैं। विशाल ब्रह्माण्ड में प्रकट होनेवाली महान् तर्क-शक्ति की उपस्थिति की अति भावनामय मान्यता ही मेरे ईश्वर का यथार्थ रूप है।"

जहाँ तक विज्ञान का सम्बन्ध है, अभी ऐसे दो मार्ग हैं, जो प्राकृतिक यथार्थता के अधिक निकट पहुँचने का विश्वास दिलाते हैं। एक तो वह विशाल नया दूरवीक्षण-यंत्र है, जो शीघ्र ही कैलिफोर्निया के पेलोमार-पर्वत से मनुष्य की दृष्टि को आकाश और काल की गहनतम गहराइयों में उस हद तक ले जायेगा, जिसकी एक पीढ़ी पूर्व के अन्तरिक्ष-विज्ञानवेत्ताओं ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी। अभी तक दूरवीक्षण-यंत्र की अधिकतम दृष्टि-शक्ति ५० करोड़ प्रकाश-वर्ष की दूरी पर स्थित ज्योतिर्मालाओं तक ही सीमित रही है। लेकिन पेलोमार का दो सौ इंच का परावर्तक (Reflector) इस शक्ति को द्विगुणित कर देगा और मनुष्य उससे आगे भी देख सकने में समर्थ हो जायेगा। सम्भवतः यह केवल नये समान जाति के दिक्-सम्बन्धी सागरों और दूरस्थ ज्योतिर्मालाओं की नयी भारी संख्याओं को, जिनका प्रकाश इस पृथ्वी तक अरबों वर्षों में पहुँचता है, प्रकाश में लायेगा। लेकिन यह कुछ दूसरी चीजों को भी सामने ला सकता है, जैसे पदार्थ की सघनता की आवृत्तियाँ या ब्रह्माण्डीय वक्रता

का दृष्टिजन्य प्रमाण, जिससे मनुष्य उस ब्रह्माण्ड के, जिसमें वह इतने महत्व-हीन रूप में रहता है, विस्तारों का हिसाब लगा सकने में समर्थ हो जाये।

ब्रह्माण्डीय रहस्य की जानकारी का दूसरा मार्ग उस नये 'संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त' से खुल सकता है, जो आइन्स्टीन के विगत शताब्दी के चतुर्थांश के प्रयत्नों का परिणाम है। आज मनुष्य के ज्ञान की बाह्य सीमाएँ सापेक्षता से और अन्त:सीमाएँ प्रमात्रा-सिद्धान्त से समझी जाती हैं। दिक्, काल, गुरुत्वाकर्षण और उन यथार्थताओं से सम्बन्धित हमारे सिद्धान्त, जो हमारे अनुभव की दृष्टि से या तो बहुत दूरस्थ हैं या बहुत विशाल, सापेक्षता की मदद से निरूपित हुए हैं। और, परमाणु, पदार्थ तथा शक्ति की मौलिक इकाइयाँ एवं उन यथार्थताओं से सम्बन्धित हमारी धारणाएँ, जो अनुभव की दृष्टि से बहुत ही रहस्यमय तथा सूक्ष्म हैं, प्रमात्रा-सिद्धान्त से निर्धारित हैं। फिर भी, ये दोनों महान् वैज्ञानिक प्रणालियाँ बिल्कुल ही पृथक और असम्बद्ध सैद्धान्तिक आधारों पर निर्भर करती हैं। ये एक-सी बातें नहीं बतलाती। 'संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त' का उद्देश्य उन दोनों के बीच एक पुल का काम करना है। प्रकृति की एकता और एकरूपता में विश्वास करके आइन्स्टीन ने परमाणु और बाह्य दिक्, दोनों के ही तत्त्वों पर लागू होनेवाले प्राकृतिक नियमों का एक ढाँचा तैयार किया है।

'संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त' प्रकृति के किन अप्रत्याशित नये पहलुओं का उद्घाटन करेगा और कितने प्राचीन रहस्यों का समाधान करने में सफल होगा, इस सम्बन्ध में अभी कुछ कहना जल्दीबाजी होगी। लेकिन इसकी इतनी सफलता तो स्पष्ट ही है कि गुरुत्वाकर्षण के नियमों और विद्युत्-चुम्बकत्व के नियमों को मिला कर इसने ब्रह्माण्डीय नियम के एक मौलिक ढाँचे की सृष्टि कर दी है। ठीक उसी तरह, जिस तरह सापेक्षवाद ने गुरुत्वाकर्षण-शक्ति को दिक्-काल-अखण्डता के ज्यामितीय तत्त्व का रूप दे दिया, 'संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त' विद्युत्-चुम्बकत्व-शक्ति— दूसरी महान् ब्रह्माण्डीय शक्ति— को समान

स्तर पर ले आता है। आइन्स्टीन ने एक बार कहा था—"यह विचार, कि दिक् के परस्पर-स्वतंत्र दो ढाँचे हैं— दाशमिक गुरुत्वाकर्षण और विद्युत्-चुम्बकत्व— सैद्धान्तिक भावना के बिल्कुल विपरीत है।" फिर भी, काफी प्रयत्न करने पर भी, वे विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र-सम्बन्धी नियमों को सामान्य सापेक्षता के सिद्धान्त में समाहित न कर सके। तदुपरान्त ३३ वर्षों के लगातार परिश्रम के पश्चात्— गणित-विषयक अनंत रहस्यों का उद्घाटन करने के बाद— उन्हें अपना लक्ष्य प्राप्त होता दिखाई पड़ा। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या इससे यह प्रमाणित होता है कि विद्युत्-चुम्बकत्व और गुरुत्वाकर्षण-शक्ति, दोनों भौतिक दृष्टि से एक ही चीज हैं? दरअसल, ऐसा कहना इससे अधिक उपयुक्त नहीं होगा कि वाष्प, बर्फ और पानी एक चीज नहीं हैं, हालाँकि इन सबको एक ही तत्त्व से अपना स्वरूप प्राप्त हुआ ह। 'संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त' यह बतलाता है कि गुरुत्वाकर्षण-मूलक और विद्युत्-चुम्बकीय शक्तियाँ एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं— भौतिक दृष्टि से वे यथार्थतः पृथक् करने-योग्य हैं ही नहीं। विशेष रूप से यह सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षणमूलक और विद्युत्-चुम्बकीय शक्तियों को एक अपेक्षाकृत गहन यथार्थता के रूप में, जो दोनों की आधारशिला का काम करती है, व्यक्त करता है। यह गहन यथार्थता एक आधारभूत ब्रह्माण्डीय क्षेत्र है, जिसके अन्तर्गत गुरुत्वाकर्षणमूलक और विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र केवल विशेष क्षणिक रूप या अवस्थाएँ हैं।

यदि 'संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त' के सम्पूर्ण परिणाम भविष्य के परीक्षणों से प्रमाणित हो गये— यदि प्रमात्रा-भौतिक विज्ञान के नियम भी इसके समीकरणों से निकाले जा सके—तो निस्संदेह पदार्थ-रचना, प्राथमिक कणों की बनावट, विकिरण की यांत्रिकता और उप-परमाणविक संसार की अन्य पहेलियों के बारे में नयी जानकारी उपलब्ध हो सकेगी। फिर भी, ये निश्चय ही गौण उत्पादन रहेंगे। 'संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त' की भारी दार्शनिक विजय इसके प्रथम शब्द में ही निहित है। भौतिक विश्व-सम्बन्धी मनुष्य की धारणाओं

को एक करने में विज्ञान-द्वारा किये गये सारे प्रयत्नों की तार्किक सिद्धि इस सिद्धान्त से होती है। शताब्दियों से आविष्कार, सिद्धान्त, अनुसन्धान और तर्क की धाराएँ एक साथ मिल कर निरन्तर चौड़े और गहरे होते जानेवाले स्रोतों की ओर अग्रसर होती रही हैं। इस दिशा में हुई पहली लम्बी प्रगति संसार के असंख्य पदार्थों का ९२ प्राकृतिक तत्त्वों में वर्गीकरण था। फिर इन तत्त्वों को कुछ मौलिक कणों में सीमित किया गया। इसके साथ ही, विश्व की विभिन्न शक्तियाँ एक-एक करके विद्युत्-चुम्बकीय शक्ति के विभिन्न रूप मानी जाने लगीं और ब्रह्माण्ड के विविध प्रकार के विकिरण– प्रकाश, ताप, क्ष-किरणें, रेडियो-तरंगें, गामा-किरणें– विभिन्न तरंगदैर्घ्य और आवृत्ति की विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के रूप में स्वीकार किये गये। अन्ततः ब्रह्माण्ड की विभिन्न सामग्रियाँ कुछ मौलिक परिमाणों– दिक्, काल, पदार्थ, शक्ति और गुरुत्वाकर्षण– में सीमित हो गयीं। लेकिन विशिष्ट सापेक्षवाद में आइन्स्टीन ने पदार्थ और शक्ति की समानता को और सामान्य सापेक्षवाद में दिक्-काल-अखण्डता की अविभाज्यता को प्रकट किया। अब 'संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त' इस संयोग-प्रणाली को चरम सीमा पर पहुँचा देता है, क्योंकि इसके द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक तत्त्ववाले क्षेत्र में प्रकट किया गया है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक तारा, प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक विचरणशील पुच्छल तारा, मंदगामी ज्योतिर्माला एवं उड़नेवाले विद्युत्-अणु गुप्त दिक्-काल-एकता की एक लहर के रूप में परिलक्षित होता है। और, इस तरह प्रकृति की दृश्य-दुरूहता बहुत साधारण ढंग से समाप्त हो जाती है। गुरुत्वाकर्षण-शक्ति और विद्युत्-चुम्बकीय शक्ति, पदार्थ और शक्ति, विद्युत्-स्खलन और क्षेत्र, दिक् और काल, इन सबके भेद उनकी व्यक्त सापेक्षता में लुप्त होकर चतुर्विस्तारीय अखंडता के– जो कि ब्रह्मांड है– एक ढाँचे में सिमट जाते हैं। इस प्रकार विश्व-सम्बंधी उनके सारे ज्ञान अन्त में एक में रूपान्तरित हो जाते हैं और ब्रह्माण्ड की गहन गुप्त एकता का उद्घाटन हो जाता है।

'संगठित क्षेत्र-सिद्धान्त' सभी विज्ञानों के 'महान् लक्ष्य' को, जो कि आइन्स्टीन के अनुसार, "कल्पनाओं की यथासम्भव कम संख्या से तर्क के आधार पर अधिकाधिक यथार्थताओं का उद्‌घाटन करना है", स्पर्श करता है। प्रस्तावनाओं की संपुष्टि, सिद्धान्तों का एकीकरण, विभिन्नता में प्रवेश और प्रत्यक्ष विश्व की एकता न केवल विज्ञान की, बल्कि मानव-बुद्धि की भी चिर-आकांक्षा है। दार्शनिक और रहस्यवादी— साथ ही, वैज्ञानिक भी— सदा ही अपने अन्तः-निरीक्षण के विभिन्न अनुशासनों के द्वारा इस प्रयत्न में लगे रहे हैं कि अस्थिर तथा भ्रामक विश्व के पीछे छिपी हुई स्थिर स्पष्टता का ज्ञान प्राप्त किया जाये। आज से २३०० वर्षों से भी पहले प्लेटो ने घोषणा की थी—"ज्ञान का सच्चा प्रेमी सदा अन्वेषणशील रहता है। वह उन्हीं तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करके शान्त नहीं हो जायेगा, जिनका अस्तित्व केवल दिखावटी है।"

× × ×

यथार्थता के उद्‌घाटन के क्षेत्र में मानव के प्रयत्नों के साथ यह दुर्भाग्य रहा है कि जैसे-जैसे प्रकृति अपने आवरणों से मुक्त होती है, जैसे-जैसे अव्यवस्था से व्यवस्था और विभिन्नता से एकता प्रकट होती है, जैसे-जैसे सिद्धान्तों का एकीकरण होता है तथा मूलभूत नियम क्रमशः सरल रूप धारण करते हैं, तैसे-तैसे प्रकट होनेवाला चित्र सामान्य अनुभूति से दूर होता जाता है— वह अधिक अनजान और बोधागम्य बनता जाता है। जहाँ एक खोपड़ी की ज्यामिति अपने द्वारा समर्थित तन्तु की रूप-रेखा को व्यक्त करती है, वहाँ हमारी इन्द्रियों-द्वारा अनुभूत एक वृक्ष की आकृति और तरंगीय यांत्रिकता-द्वारा प्रतिपादित उसके स्वरूप के बीच कोई साम्य नहीं है ; अथवा ग्रीष्म-ऋतु की रात में तारों-भरे आकाश की झाँकी और चतुर्विस्तारीय अखण्डता के बीच, जिसने हमारे यूक्लिडियन दिक् के ज्ञान का स्थान लिया है, कोई समता नहीं है।

दृश्य रूप और यथार्थता के अन्तर को स्पष्ट करने और ब्रह्माण्ड के मूल ढाँचे का उद्‌घाटन करने के प्रयत्न में विज्ञान को इन्द्रियगत अनुभवों का अति-

क्रमण भी करना पड़ा है। लेकिन, आइन्स्टीन का कहना है कि इसके उच्चतम ढाँचे में विषय का पूर्ण अभाव रहता है। किसी सिद्धान्त में जिस हद तक इन्द्रिय-जनित अनुभव नहीं होते, उसी हद तक वे विषय-रहित होते हैं; क्योंकि मनुष्य वस्तुतः उतने ही संसार को जान सकता है, जितने का अनुभव वह अपनी इन्द्रियों से करता है। यदि वह उन सब अनुभूतियों और स्मृतियों को निकाल बाहर करे, तो कुछ भी शेष नहीं रह जाता। दार्शनिक हीगेल ने इन शब्दों में यही मन्तव्य प्रकट किया था—"विशुद्ध 'होना' और 'न होना' एक ही है।" सम्पर्करहित अस्तित्व कोई अर्थ नहीं रखता। अतएव लोकविरुद्ध रूप से जिसे वैज्ञानिक और दार्शनिक 'प्रत्यक्ष संसार' कहते हैं— प्रकाश, रंग, नीले आकाश, हरे पत्तों, झर-झर करते पवन और पानी की कलकल ध्वनि से विभूषित संसार, जिसकी सृष्टि मानवीय इन्द्रियों की अनुभूति पर आधारित है— वस्तुतः वह संसार है, जिसमें मर्यादित मानव अपनी सहज प्रवृत्ति से कैद है। और, जिसे वैज्ञानिक और दार्शनिक 'यथार्थ संसार'— रंग-रहित, ध्वनि-रहित, अप्रत्यक्ष संसार, जो कि मनुष्य की अनुभूतियों के विमान के नीचे 'आइस-बर्ग' के सदृश है— कहते हैं, वह प्रतीकों का अस्थिपिंजर-मात्र है।

प्रतीक बदलते रहते हैं। उदाहरणस्वरूप, जब कि विगत शताब्दी के भौतिक विज्ञानवेत्ता यह जानते थे कि गुलाब की लाली एक आत्मगत सौन्दर्यानुभूति है, उनका यह विश्वास था कि 'यथार्थतः' जिस गुण को वे 'लाली' के नाम से जानते थे, वह प्रकाशमान् 'ईथर' का एक कम्पन-मात्र था। आज 'लाली' को तरंगदैर्घ्य मानने की परम्परा बन गयी है। लेकिन यह सोचना भी समान रूप से उचित है कि यह फोटोन में निहित शक्ति का मूल्य है। इन्हीं बातों को देखते हुए एक प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानवेत्ता ने कहा था—"सोमवारों, बुधवारों और शुक्रवारों को एक व्यक्ति प्रमात्रा-सिद्धान्त का प्रयोग करता है और मंगलवारों, गुरुवारों और शनिवारों को तरंग-सिद्धान्त का।" दोनों ही मामलों में जो धारणाएँ काम में लायी जाती हैं, वे सिद्धान्त की आदर्श रचनाएँ होती हैं।

परीक्षण करने पर गुरुत्वाकर्षण, विद्युत्-चुम्बकत्व, शक्ति, धारा, आवेग, परमाणु, न्यूट्रान-जैसी सभी धारणाएँ सैद्धान्तिक ढाँचों, आविष्कारों और लक्षणों में परिणत हो जाती हैं, जिन्हें मानव-बुद्धि ने पदार्थों के बाह्य रूप के पीछे छिपी यथार्थता को समझने में सहायता के लिए जन्म दिया है। अतः इन्द्रियों के छल-पूर्ण और चंचल प्रतिनिधित्व के स्थान पर विज्ञान ने प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व की विभिन्नतापूर्ण प्रणालियों को मदद पहुँचायी है। जब कि ये प्रणालियाँ निरन्तर बढ़ती हुई गणित-विषयक शुद्धता के द्वारा पहचान ली जाती हैं, कोई ऐसा वैज्ञानिक ढूँढ़ निकालना कठिन होगा, जो अपनी पिछली भूलों को समझ कर अन्तिम सच्चाइयों का समर्थन करने की स्थिति में हो। इसके विपरीत, आधुनिक वैज्ञानिक, न्यूटन की भाँति, इस बात से परिचित हैं कि वे दानवों के कन्धों पर सवार हैं और उनकी व्यक्तिगत दृष्टि आनेवाली पीढ़ियों को ठीक उसी तरह दोषपूर्ण प्रतीत हो सकती है, जिस तरह अपने पूर्वजों की मान्यताएँ उन्हें प्रतीत हुई थीं।

× × ×

इस बात को लेकर भावी रहस्योद्घाटनों के लिए आशा बँधती है कि सम्भवतः मनुष्य जिस प्रकृति के बीच रहता है, उसके रहस्यों को जानने के अपने संघर्ष में वह कुछ अन्तिम सीमाओं तक भी पहुँच गया है। सूक्ष्म जगत् में प्रवेश करते समय उसने अनिश्चितता, द्विरूपात्मकता और आत्मविरोधों का– इन चेतावनीपूर्ण बाधाओं का– सामना किया है। वह अपनी प्रणालियों में परिवर्तन लाये बिना उन वस्तुओं की गहराई में प्रवेश करके जिज्ञासापूर्ण भेद प्राप्त नहीं कर सकता, जिनका अनुभव वह प्राप्त करना चाहता है। इसी तरह विस्तृत जगत् का उद्घाटन करते समय वह अन्त में दिक्-काल, राशि-शक्ति और पदार्थ-क्षेत्र की रूपविहीन एकता के निकट पहुँचता है, जो कि एक अन्तिम, परिवर्तनरहित और अनन्त क्षेत्र है तथा जिसके और आगे बढ़ने की गुंजाइश प्रतीत नहीं होती। प्लेटो ने कहा था–"यह दृश्य संसार कारागार

है।" विज्ञान ने इस कारागार से निकलने के लिए जो सम्भावित मार्ग तैयार किये हैं, वे प्रतीकात्मकता और विभिन्नता के गम्भीर रहस्य की ओर ही बढ़ते हैं।

यह सम्भव है कि वैज्ञानिक ज्ञान की चरम और अजेय सीमा, सिद्धान्त और प्राकृतिक प्रणाली की एकरूपता में प्रकट हो जाये– विज्ञान सारे ब्रह्माण्डीय तत्त्वों का लेखा-जोखा रखे, कुछ भी उससे बाकी न रहे। इस लक्ष्य की ओर पहुँचने के क्षेत्र में विज्ञान ने अब तक अपनी सर्वाधिक उल्लेखनीय सैद्धान्तिक और क्रियात्मक सफलताएँ प्राप्त की हैं। हालाँकि इसने वस्तुओं के वास्तविक आचरण के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बताया है, फिर भी उनके सम्बन्धों और और उन घटनाओं को, जिनसे वे सम्बद्ध हैं, व्यक्त करने में इसे भारी सफलता मिली है। अल्फ्रेड नार्थ ह्वाइटहेड ने कहा था–"घटना ही यथार्थ वस्तुओं की इकाई है।" इस कथन से उनका तात्पर्य यह था कि सैद्धान्तिक प्रणालियाँ चाहे जितनी बदलें और उनके प्रतीक तथा धारणाएँ कितनी ही छूछी क्यों न हों, विज्ञान और जीवन के आवश्यक और चिरस्थायी तथ्य ब्रह्माण्ड की घटनाएँ और गतिविधियाँ हैं। इस विचार के परिणामों को एक साधारण प्राकृतिक घटना– यथा दो विद्युत्-अणुओं का संयोग– के द्वारा सर्वोत्तम ढंग से समझाया जा सकता है। आधुनिक भौतिक विज्ञान के स्वरूप के अन्तर्गत, इस घटना को दो प्राथमिक भौतिक कणों या विद्युत्-शक्ति की दो प्राथमिक इकाइयों की टक्कर, अथवा कणों या सम्भावित तरंगों का मिलन, अथवा एक चतुर्विस्तारीय दिक्-काल-अखण्डता में भँवरों का मिश्रण कहा जा सकता है। सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता कि वस्तुतः इस टक्कर के मूलतत्त्व क्या हैं। इस तरह, एक तरह से विद्युत्-अणु 'यथार्थ' नहीं, बल्कि केवल सैद्धान्तिक प्रतीक हैं। दूसरी ओर, सम्मिलन स्वयं 'यथार्थ' है– अतः घटना 'यथार्थ' हुई। ऐसा प्रतीत होता है, मानो यथार्थ पदार्थ-जगत् का आधा भाग सदा ही एक अर्द्धपारदर्शक प्लास्टिक के महल के अन्दर छिपा रहता है

और सिद्धान्त के नित्य परिवर्तनशील स्वरूपों के द्वारा, विकृत धुँधली सतह से, झाक कर देखने पर मनुष्य अस्पष्ट रूप से अन्दर के कुछ प्रत्यक्षतः स्थायी सम्बन्धों और पुनरावृत्तिपूर्ण घटनाओं को देख लेता है। इन सम्बन्धों और घटनाओं की जानकारी ही उसका अधिकतम सम्भव ज्ञान है। उसके आगे वह जड़वत् शून्य में ताकता है।

वैज्ञानिक चिन्तन के विस्तार से एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो गयी है— भौतिक जगत् का ऐसा कोई रहस्य नहीं है, जो अपने आगे भी किसी रहस्य की ओर इंगित न करता हो। ज्ञान के सभी मुख्य मार्ग, सिद्धान्त की सभी गलियाँ और तर्क अन्ततः इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानवीय कल्पना-शक्ति का कभी विस्तार नहीं हो सकता; क्योंकि मनुष्य अपने अस्तित्व, मर्यादा और प्रकृति के बन्धन में बँधा है। वह अपनी दृष्टि को जितना विस्तृत करता है उतने ही स्पष्ट रूप में, भौतिक विज्ञानवेत्ता नील्स बोर की इस उक्ति में निहित तथ्य को समझता ह—"अस्तित्व के विशाल नाटक में हम ही अभिनेता और दर्शक, दोनों हैं।" इस प्रकार मनुष्य स्वयं ही एक बड़ा रहस्य है। वह अपने चारों ओर विस्तृत विशाल ब्रह्माण्ड को इसलिए नहीं समझता कि वह स्वयं को नहीं समझता। वह अपनी इन्द्रिय-प्रणालियों को बहुत कम समझता है और उससे भी कम समझता है अपने चारों ओर विस्तृत संसार का अनुभव करने, तर्क करने और कल्पना करने की अपनी क्षमता को। और, सबसे कम उसकी जानकारी अपनी इस क्षमता की है कि वह कितना ऊँचा उठ सकता ह और पर्यवेक्षण के कार्य में स्वयं का किस हद तक निरीक्षण कर सकता है।

मनुष्य के समक्ष सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह स्वयं उस संसार का हिस्सा है, जिसका उद्घाटन वह करना चाहता है। उसका शरीर और गर्वीला मस्तिष्क उन्हीं तत्त्वों से निर्मित है, जिससे अंतःनक्षत्रीय दिक् के काले मेघों का सृजन हुआ ह। अन्ततः वह मौलिक दिक्-काल-क्षेत्र की ही एक क्षण-भंगुर कृति । विस्तृत जगत् और सूक्ष्म जगत् के बीच में खड़े मानव के चारों

ओर बाधाएँ-ही-बाधाएँ हैं और सम्भवतः उसके पास १९०० वर्ष पुरानी संत पाल की इस उक्ति को दुहराने के सिवा कोई चारा नहीं है –"इस संसार का निर्माण ईश्वर के आदेश से इस प्रकार हुआ है कि जो वस्तुएँ प्रत्यक्ष दिखायी पड़ती हैं, वे वस्तुतः सर्वथा अप्रत्यक्ष तत्त्वों से बनी हैं।"

परिशिष्ट

सैद्धान्तिक भौतिक विज्ञान में एक निश्चित सिद्धान्त तक पहुँचने के कई मार्ग उपलब्ध हैं। इस पुस्तक में जड़ राशि में वृद्धि के सिद्धान्त की व्याख्या एक सहज बोधगम्य रूप में ठीक उसी तरह दी गयी है, जिस तरह कालेजों में पढ़ायी जानेवाली भौतिक विज्ञान की पुस्तकों में रहती है। शायद गणित की जानकारी रखनेवाले लोग डा. आइन्स्टीन-द्वारा इस सिद्धान्त को दिये गये विशद् रूप को, जो कि उनकी पुस्तक "Relativity, the Special and General Theory" में प्रकाशित है, समझना चाहें; अतएव हम उस पुस्तक के प्रकाशक पीटर स्मिथ की अनुमति से उसके कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

"सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त से सामान्य ढंग का जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिणाम निकला है, वह राशि के सिद्धान्त से सम्बन्धित है। सापेक्षवाद की उत्पत्ति के पहले भौतिक विज्ञान मौलिक एवं महत्वपूर्ण दो संरक्षण-नियमों को

मान्यता देता था– एक तो शक्ति-संरक्षण का नियम और दूसरा राशि-संरक्षण का नियम। ये दोनों मौलिक नियम एक-दूसरे से सर्वथा स्वतंत्र प्रतीत होते थे। सापेक्षता के सिद्धान्त के द्वारा उन्हें एक रूप प्राप्त हो गया है।.......

"सापेक्षता के सिद्धान्त के अनुसार, राशि m के पदार्थीय बिन्दु की गत्यात्मक शक्ति प्रसिद्ध व्यक्तीकरण $m\frac{v^2}{2}$ से नहीं, बल्कि $\frac{mc^2}{\sqrt{1-\frac{v^2}{c^2}}}$ से प्रकट होती है।

"अपेक्षाकृत सरल विचारों के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बाध्य होते हैं–एक वस्तु, जो v वेग से गतिशील है और जो अपनी प्रणाली के वेग में कोई परिवर्तन लाये बिना विकिरण के रूप में शक्ति की Eo मात्रा ग्रहण करती है, परिणामस्वरूप अपनी शक्ति को इस मात्रा में बढ़ा लेती है–

$$\frac{Eo}{\sqrt{1-\frac{v^2}{c^2}}}$$

"ऊपर वस्तु की गत्यात्मक शक्ति के लिए प्रस्तुत व्यक्तीकरण को देखते हुए उस वस्तु की अपेक्षित शक्ति यह हो जाती है।

$$\frac{\left(m+\frac{Eo}{c^2}\right)c^2}{\sqrt{1\ \frac{v^2}{c^2}}}$$

स प्रकार इस वस्तु की शक्ति वही है, जो वेग से विचरण करनेवाली राशि $\left(m+\frac{Eo}{c^2}\right)$ की। अतः हम कह सकते हैं–यदि कोई वस्तु Eo मात्रा में शक्ति